p1A 4/2/2009 1:23 AM Page 1

चौथी दुनिया

दिल्ली 5 अप्रैल से 11 अप्रैल 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

3

चुनाव, पार्टियां और कॉरपोरेट का चंदा

9

चुनाव के बाद चुनाव

7

बिहार में विकास और जातीय समीकरण के बीच चुनावी युद्ध

14

संसद पहुंच कर क्यों बेज़ुबान हो जाते हैं पत्रकार

16

इज़राइल पर ईरान की छतरी तानेगा अमेरिका

मूल्य 20 रुपये

ऐसी लोकसभा मत चुनिए

आने वाला आम चुनाव यानी पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव भारतीय लोकतंत्र का भविष्य लिखेगा. देश के नौजवान , किसान, दलित और अल्पसंख्यकों की यह जिम्मेदारी है कि वे सही लोगों को संसद के लिए चुनें. ऐसे लोगों को न चुनें, जिनका विश्वास भारतीय संविधान, देश की एकता और मानवीय मूल्यों में नहीं है. अगर आप इस बार नहीं चेते, तो आपको अगली लोकसभा के लिए वोट देने का अवसर नहीं मिल सकेगा. मिलेगा तो नौजवानों और आम जनता को अंधेरा भविष्य. ऐसी लोकसभा मत चुनिए, जो लोकतंत्र के भविष्य को काली स्याही से लिखने का काम करे.

मनीष कुमार

हम ख़तरे में हैं और विडंबना है कि हमें ख़तरे का पता भी नहीं है. जिन पर ख़तरे की चेतावनी देने की जिम्मेवारी है, वे खुद ख़तरा पैदा करने वालों में बदल चुके हैं. 2009 का संसद का चुनाव देश का भाग्य तय करेगा और साथ ही तय करेगा कि सोलहवीं लोकसभा के लिए कभी चुनाव होगा भी या नहीं. यह चुनाव ऐसे समय में हो रहा है, जब पूरे दक्षिण एशिया में प्रजातंत्र पर ख़तरा मंडरा रहा है. हम क्यों समझ नहीं पा रहे हैं कि भारत में भी पाकिस्तान और बांग्लादेश जैसी परिस्थितियां मौजूद हैं. हम देश के नौजवानों से कहना चाहते हैं कि आनेवाला लोकसभा का आम चुनाव सिर्फ भारत के लिए नहीं, पूरे दक्षिण एशिया में प्रजातंत्र को बचाने का आख़िरी मौक़ा है, तथा यह भी कि क्या प्रजातंत्र दक्षिण एशियाई देशों के लिए प्रासंगिक है भी या नहीं. पिछली कई लोकसभाओं के सदस्य रहे सांसदों ने पैसे लेकर संसद में सवाल पूछे, रिश्वत ली, संसद की कार्यवाही में हिस्सा नहीं लिया और लिया भी तो मूर्खतापूर्ण हंगामा किया. जनता के दर्द और तक़लीफ़ का एक प्रतिशत हिस्सा भी संसद को प्रभावित नहीं कर पाया. हालत यह बना दी गई है कि देश के लगभग डेढ़ सौ से ज़्यादा ज़िले सरकार की पहुंच से बाहर चले गए हैं. नब्बे फीसदी लोग सरकार की नीतियों से पैदा होने वाले फ़ायदे से बाहर हैं. आर्थिक मंदी की मार है, बेरोज़गारी चरम सीमा पर है, किसानों की आत्महत्या की घटनाएं बढ़ रही हैं. जंगल ख़त्म हो रहे हैं, पर्यावरण ख़तरे में है. अगर इस बार समझदार और जनता के दुख-दर्द को समझने वाले लोग लोकसभा में जगह नहीं बना सके, तो देश की एकता और अखंडता ख़तरे में आ जाएगी और प्रजातंत्र पर सवालिया निशान लग जाएगा. हम चेतावनी देते हैं और सलाह भी कि ऐसे सांसदों को मत चुनिए, जिनकी अज्ञानता देश के भविष्य पर सवाल खड़े कर दे.

भारत में भ्रम की स्थिति पैदा हो गई है. लोग अब यह सोचने लगे हैं कि क्या सचमुच सरकारी तंत्र उनके किसी काम का है भी या नहीं. इसकी वजह भी साफ है. सरकार की योजनाएं आम लोगों के काम में नहीं आती हैं. जो भी नीति बनती है, उसका फ़ायदा केवल दस फीसदी लोगों को होता है. आम जनता को सरकारी कामकाज से फ़ायदा नहीं मिल रहा है. अगर सौ करोड़ की जनसंख्या में नब्बे करोड़ लोग सरकारी योजनाओं का फ़ायदा नहीं उठा पा रहे हैं, तो उनका सोचना भी सही है. ऐसा लगता है कि प्रजातंत्र की आड़ में सरकारें जो योजनाएं बनाती हैं, वे सिर्फ पांच फीसदी के लिए होता है. जिनके पास सब कुछ है, सारा फ़ायदा उन्हीं पांच फीसदी लोगों तक पहुंचता है. बाक़ी पांच फीसदी लोग इन योजनाओं की परिधि से जुड़े होते हैं, जिन्हें थोड़ा-बहुत फ़ायदा होता है. लोकसभा प्रजातंत्र का चेहरा है. अगर लोकसभा की तस्वीर ही बिगड़ रही है, तो प्रजातंत्र का नुकसान तो होगा ही. अगर लोकसभा से लोगों का विश्वास उठ रहा है, तो इसका मतलब यही है कि देश में प्रजातंत्र पर ख़तरा मंडरा रहा है.

क्या आपके सांसदों ने अपने क्षेत्र की उन्नति के लिए लोकसभा में कोई आवाज़ उठाई? क्या उसने क्षेत्र के किसानों और और मज़दूरों के विकास के लिए कोई बहस की? क्या अपने क्षेत्र में किसी उद्योग या व्यापार की शुरुआत के लिए सरकार से मदद मांगी? क्या उन्होंने स्वास्थ्य, साफ पानी, बिजली और सड़क के लिए पैसे की मांग की? आंकड़े बताते हैं कि चौदहवीं लोकसभा के एक तिहाई सांसद ऐसे रहे, जिन्होंने पूरे कार्यकाल के दौरान अपने क्षेत्र के बारे में एक भी सवाल नहीं उठाया. लोकसभा की कार्यवाही के नियम 377 के तहत सांसदों को अपने इलाके की समस्याओं पर सवाल पूछने का अधिकार है, लेकिन चौदहवीं लोकसभा में 166 सांसद ऐसे रहे, जिन्होंने जनता से जुड़े सवालों को एक बार भी नहीं उठाया. ऐसे सांसदों को लोकसभा भेजने का क्या फायदा है, जिनके पास जनता की समस्याओं को सरकार के सामने लाने की फुर्सत ही नहीं है. अब फिर से यही लोग चुनाव के मैदान में हैं. अगर वह वोट मांगने आएं, तो यह सवाल ज़रूर पूछें कि पिछले पांच सालों में लोकसभा जाकर उन्होंने क्या किया.

देश की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में ऐसे लोग, ऐसे दल और ऐसी संस्थाएं घुस चुकी हैं, जिन्हें प्रजातंत्र पर भरोसा ही नहीं है. हमारे देश में लोकसभा चुनावों को हाईजैक करने की कोशिश हो रही है. अगर किसी के पास पैसा है, तो वह किसी भी राजनीतिक दल को अपना गुलाम बना सकता है. पैस के दम पर राजनीतिक दलों के टिकट मिलते हैं. चुनाव का खर्च इतना बढ़ चुका है कि राजनीतिक दल किसी से भी पैसा लेने को तैयार हैं. इन दलों को इससे कोई मतलब नहीं कि पैसे देने वाला कौन है, पैसा कहां से आ रहा है? राजनीतिक दलों को पैसे देने के पीछे की मानसिकता क्या है और उसका लक्ष्य क्या है? यही वजह है कि कुछ साल पहले भाजपा के पूर्व अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण पैसे लेते हुए टीवी के पर्दे पर पकड़े गए. अगर देश में प्रजातंत्र को बचाना है, तो ऐसे सांसदों को चुनें, जो कम से कम अपने गुंडों के साथ चौराहों पर सरकारी अफ़सरों की पिटाई और हत्या करते न नज़र आएं. जो जनता के सवालों के लिए रिश्वत की मांग न करें. कम से कम. पैसे और लाठी की ताक़त का ज़ोर हमारे चुनाव पर इतना ज़्यादा है कि

राजनीतिक दल ग़लत लोगों को टिकट देते हुए शर्मिंदा भी महसूस नहीं करते. दस फीसदी सासंदों ने चौदहवीं लोकसभा की कार्यवाही में हिस्सा नहीं लिया, उन्होंने न तो कोई सवाल पूछे और न ही किसी विषय पर अपनी राय दी. हो सकता है कि देश से जुड़े विषयों पर उनकी कोई राय ही न हो, या वे अपने क्षेत्र की समस्याओं के बारे में जानते ही न हों. सवाल पूछना तो दूर, ज़्यादातर सांसद ऐसे हैं, जो सरकार द्वारा दी गई दो करोड़ की सालाना रकम को भी पूरी तरह खर्च नहीं करते. हम जिन्हें चुनते हैं, क्या वे अपने ही चुनाव घोषणा-पत्र को पढ़ पाते हैं. अमल करने की बात तो दूर. वे कम से कम उसे एक बार पढ़ तो लेते.

हम देश के नौजवानों से साफ कहना चाहते हैं कि आप नहीं चेते, तो आनेवाले पांच वर्षों में बढ़ती बेरोज़गारी देश में लूट और अपराध को एक प्रमुख उद्योग में बदल देगी. राजनीतिक दल आपको भावनात्मक सवालों पर, सांप्रदायिक सवालों पर इस्तेमाल करेंगे और देश दंगों की अंतहीन कड़ियां देखेगा. लड़ेंगे आप, पर राज करेगा कोई अपराधी, जो जाति के ताक़तवर इंसान का जामा पहने होगा. आपके मां-बाप आपकी सलामती की चिंता में रोज़ मरेंगे, आपका छोटा भाई भी आपके रास्ते चल पड़ा, तो या तो आपको मरना पड़ेगा या आपके भाई को, क्योंकि इस रास्ते पर गोलियों से एक को तो मरना है ही.

जिनके सामने अच्छे भविष्य का रास्ता बंद हो गया है, उनमें मुसलमान, दलित, किसान और सवर्ण ग़रीबों के नौजवान शामिल हैं. अगर इन वर्गों के युवकों की समझ में नहीं आया कि उनकी भावनाओं का इस्तेमाल कर उन्हें ही तबाह करने की साज़िश हो रही है, तो देश को अराजकता की आंधी से कोई भी नहीं बचा सकता. आज किसान आत्महत्या कर रहा है, पर कल वह सोच सकता है कि आत्महत्या करने से पहले क्यों नहीं ज़िम्मेदार अधिकारियों में से कुछ की हत्या कर दे? जिन्हें देश के विकास में कोई हिस्सा नहीं मिल रहा है, वे निराशा में ऐसा ही कदम उठाएंगे. इन सबके पीछे हमारी संसद का काला चेहरा है, जो बनी तो देश का भविष्य संवारने के लिए है, पर लगातार देश का भविष्य बिगाड़ती जा रही है. इस बार किसानों के लिए मरने-जीने का सवाल है. हर प्रदेश में किसानों की हालत ख़राब है. वे आत्महत्या के लिए मजबूर हैं. सरकार की नीतियों की वजह से खेती करने का तरीक़ा बदल गया है. कृत्रिम खाद और बीज की वजह से उपजाऊ मिट्टी बंजर बन चुकी है. पानी का निजीकरण हो रहा है. उद्योग और विकास के नाम पर उनकी उपजाऊ ज़मीन छीन ली जा रही है. उनकी समस्याएं इतनी विकराल हैं कि लगता है किसानों को चारों तरफ से घेर कर मारने की साज़िश हो रही है. अगर इस बार लोकसभा में ऐसे सांसद चुन कर नहीं आए, जो किसानों की समस्याओं को लेकर लड़ें, तो किसान बंदूक उठाने को मजबूर हो जाएंगे. सत्ता का आनंद उठानेवाले समाज ने अगर इस बार किसानों की मजबूरी पर ध्यान नहीं दिया, तो भारत के गांव सरकार की पहुंच से बाहर हो जाएंगे. दुख की बात यह है कि कोई भी राजनीतिक दल किसानों के दुख-दर्द को बांटनेवाला नहीं है. जिस भी पार्टी की सरकार आती है, वह पिछली सरकार से अधिक निख़्र साबित होती है. किसान तो यह समझने लगे हैं कि सरकार प्रॉपर्टी डीलर बन चुकी है. उनका काम बस किसानों की ज़मीन हड़पना ही रह गया है. हमारी आपसे अपील है कि ऐसे लोगों को मत चुन कर भेजिए, जो किसानों के मसले पर चुप कर जाएं. चुनाव में पैसे का बोलबाला बढ़ा है. बंदूक और लाठी के बल पर चुनाव जीतने का सिलसिला चल पड़ा है. चुनाव जीतना ही राजनीतिक दलों का अकेला मक़सद बन गया है. चुनावों में बूथ लूटना और कमज़ोर तबक़े के लोगों को पोलिंग बूथ से भगा देने की प्रथा चल पड़ी है. जो अपराधी पहले बूथ लूटते थे, खुद चुनाव के मैदान में उतर गए. राजनीति का अपराधीकरण पूरा हो गया. राजनीतिक दलों ने भी इन अपराधियों के सामने घुटने टेक दिए. चौदहवीं लोकसभा के चुनाव में कुल 533 ऐसे उम्मीदवार थे, जिन पर गंभीर आपराधिक मामले थे. लोकसभा की कुल सीटें 545 हैं. अगर सब जीत गए होते, तो ज़रा सोचिए क्या होता? शुक्र है कि इनमें से केवल 133 ही चुनाव जीत कर हमारे माननीय सांसद बने. चुनाव में पैसे का बोलबाला इसलिए है कि राजनीतिक दल ही इसे बढ़ावा देते हैं. देश में किसी भी पार्टी के फंड का ऑडिट नहीं होता. ये पैसा कहां से लाते हैं, इन्हें पैसे कौन देता है, क्यों देता है, इस पर अभी कई खुलासे होने बाक़ी हैं.

अगर देश के लोग, विशेषकर नौजवान नहीं चेते, तो हमें दंगों, आतंकवादी घटनाओं, हत्याओं और गृहयुद्ध जैसी स्थितियों के लिए तैयार रहना चाहिए. इसलिए ऐसी संसद मत चुनिए जो आम लोगों के लिए नहीं, खास लोगों के हितों की पैरोकारी करे, जो ऐसी योजनाएं बनाए जिससे विकास नहीं, विनाश निकले, जो देश की आज़ादी मज़बूत करने की जगह गुलामी में जकड़े और जिसे देश की बुनियादी समस्याओं की समझ ही न हो. हम आपको सिर्फ आगाह कर सकते हैं, सलाह दे सकते हैं कि लोकसभा चुनाव काफी महत्वपूर्ण हैं. अगर इस बार भी ग़लत लोग लोकसभा में पहुंच गए, तो इतनी देर हो जाएगी कि आने-वाली पीढ़ियों को सिवाय काले भविष्य के और कुछ न मिले.

manish.chauthiduniya@gmail.com

फोटो-प्रभात पाण्डेय

आडवाणी को ख़त्म करने की साज़िश कौन कर रहा है?

जानने के लिए पढ़िए पेज 5

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

मेट्रो रेल किसकी है...

आखिर मेट्रो है किसकी? सवाल जायज़ इस वजह से है कि केंद्र और राज्य की कई एजेंसियां इसके मालिकाना हक़ को लेकर आपस में खींचतान कर रही हैं. केंद्र की सरकार उम्मीद कर रही है कि भारत सरकार के अटॉर्नी जनरल के विचार इस उलझे हुए मसले को सुलझा देंगे. फिलहाल तो रेलवे, शहरी विकास, वित्त मंत्रालय और योजना आयोग केंद्र की विधायक शक्ति को लेकर आपस में भिड़े हुए हैं. भिड़ंत कई मेट्रो रेल प्रोजेक्ट्स को लेकर है. शहरी विकास सचिव एम रामचंद्रन इस मसले को लेकर सरकार से एक व्यापक कानून पारित कराना चाहते हैं, लेकिन इसका विरोध रेल मंत्रालय कर रहा है, जो मेट्रो-रेल व्यवस्था पर पूरा मालिकाना हक चाहता है. इस बीच, रामचंद्रन और उनके बाबू लोग योजना आयोग से भी निजी-सार्वजनिक साझेदारी को लेकर भिड़ रहे हैं. इस खींचतान ने चेन्नै और कोच्चि में मेट्रो परियोजना में देर कर दी है. निजी-सार्वजनिक भागीदारी को सरकारी समर्थन इस विचार से मिल रहा है कि सरकार इन सभी परियोजनाओं में धन नहीं लगा सकती. यह बिल्कुल अलग बात है कि दिल्ली मेट्रो के निदेशक ई श्रीधरन ने हैदराबाद मेट्रो परियोजना के संदर्भ मे सार्वजनिक तौर पर इस विचार की आलोचना की थी.

बोझ कम करने का सदाबहार तरीका

केंद्रीय सूचना आयोग के पास आरटीआई से जुडे प्रश्नों और अपीलों का अंबार लगा है. सरकार ने इससे निपटने के लिए एक आसान तरीका खोज निकाला है. सरकार ने दो नए सूचना आयुक्तों की नियुक्ति की है. पिछले महीने ओ पी केजरीवाल के बर्खास्त होने के बाद फिलहाल सीआईसी में सात आयुक्त हैं. नियमों के मुताबिक तीन और आयुक्तों की नियुक्ति की जा सकती है. हालांकि आरटीआई कार्यकर्ताओं को इस बात पर संदेह है कि क्या और अधिकारियों की नियुक्ति ही सीआईसी के बोझ को कम कर सकेंगी. एक्टिविस्ट शेखर सिंह के मुताबिक वर्तमान आयुक्त ही इस बोझ को कम कर सकते हैं. अगर उनके पास पर्याप्त संख्या में काम करनेवालों की नियुक्ति हो जाए, तो महीने की 250-300 अपीलों को निपटाना कतई मुश्किल नहीं होगा. शेखर कम से कम 16 और अधिकारियों की नियुक्ति की सिफारिश करते हैं, न कि शीर्ष पर नई नियुक्ति कर पैसों की बर्बादी के पक्ष में हैं. हालांकि ऐसा होने की संभावना कम ही है, क्योंकि सरकार ने पहले ही सूचना आयुक्त शैलेश गांधी की अतिरिक्त स्टाफ की दरख्वास्त नामंजूर कर दी है. सरकार का कहना था कि व्यय विभाग ने प्रति आयुक्त सात स्टाफ की ही मंजूरी दी है. संभावना तो अब इसी बात की है कि सीआईसी में दो और सूचना आयुक्त आ जाएंगे, लेकिन काम का बोझ कतई कम नहीं होगा. अचरज की बात है कि शीर्ष पर ही मारामारी क्यों.

चंडीगढ़ में शह और मात का खेल

पिछले कुछ महीनों से चंडीगढ़ अजब खींचतान का गवाह बना हुआ है. शहर के प्रशासक और पंजाब के राज्यपाल जनरल एस एफ रोड्रिग्स और केंद्रशासित प्रदेश के सलाहकार प्रदीप मेहरा के बीच कुछ विवादास्पद भूमि सौदों को लेकर शब्दों की लड़ाई जारी है. मेहरा इस केंद्रशासित प्रदेश के सबसे बड़े बाबू हैं और उन्होंने रोड्रिग्स द्वारा शुरू की गई कई हाई-प्रोफाइल परियोजनाओं जैसे फिल्मसिटी और मेडि-सिटी पर आपत्ति दर्ज कराई है.

इस लड़ाई में बाबुओं की जान पर बन आई और खेमेबाज़ी तेज़ हो गई, जब तक सरकार ने मेहता के आरोपों की जांच नहीं शुरू करवा दी. हालांकि लड़ाई अब भी बेरोकटोक जारी है. रोड्रिग्स ने मातहत अधिकारियों का सीआर लिखने का अधिकार उनसे छीन लिया, जब शहर के एक बड़े प्रशासनिक अधिकारी के ख़िलाफ भ्रष्टाचार के आरोप लगे थे.

हालांकि, मेहरा बेदाग बच गए थे, लेकिन रोड्रिग्स ने उनका अधिकार वापस देने से इंकार कर दिया था. हालांकि अब केंद्र सरकार ने चंडीगढ़ के प्रशासक को निर्देश दिए हैं कि मेहता के अधिकार वापस बहाल किए जाएं. अब हरेक को रोड्रिग्स की अगली चाल का इंतज़ार है. ताज़ा घटनाक्रम के लिए रखिए अख़बार की इसी जगह पर नज़र.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

मधुकर गुप्ता

भारत सरकार के वर्तमान गृह-सचिव मधुकर गुप्ता को सरकार ने राहत दी है. वह 31 मार्च को रिटायर होने वाले थे. उनकी सेवा को तीन महीने के लिए सेवा-विस्तार दिया गया है.

मुंबई धमाके के बाद जब शिवराज पाटिल ने इस्तीफा दिया था, तब मधुकर गुप्ता को हटाए जाने की बात चली थी. गुप्ता के सेवा विस्तार के लिए चुनाव आयोग ने सरकार से सिफारिश की. लोकसभा चुनाव की तैयारी के लिए मधुकर गुप्ता पिछले कुछ महीनों से सरकार की विभिन्न एजेंसियों और चुनाव आयोग के बीच समन्वय का काम कर रहे हैं.

चुनाव आयोग का मानना है कि चुनाव के दौरान अर्ध-सैनिकबलों की तैनाती के लिए मधुकर गुप्ता का बने रहना जरूरी है. मधुकर गुप्ता उत्तरांचल कैडर के आईएएस अधिकारी हैं. वे 1971 बैच के हैं. मधुकर गुप्ता को अगर 31 मार्च को सेवा-निवृत्त कर दिया जाता, तो उन्हें रिटायरमेंट के बाद कुछ नहीं मिलता. वह घर बैठ जाते, तो उन्हें कुछ भी हाथ नहीं लगता.

लेकिन इन तीन महीने के बाद जब वह रिटायर होंगे, तब नई सरकार बनेगी. उसके बाद उन्हें नया एसाइनमेंट मिल सकता है. खबर यह भी है कि मधुकर गुप्ता के रिटायर होने के बाद जीके पिल्लई गृह सचिव बनेंगे. वे केरल काडर के आईएएस अधिकारी हैं. वह भारतीय प्रशासनिक सेवा से 1972 में जुड़े.

सुनील कुमार सिंह

सुनील कुमार सिंह की नियुक्ति भारी उद्योग-विभाग के निदेशक के पद पर की गई है. श्री सिंह ने इस पद से सेवानिवृत्त हुए श्री बीबी सिंह की जगह ली है. इनका कार्यकाल नवंबर 2008 में ही समाप्त हो गया था.

श्री सिंह 1983 बैच के आईएएस अधिकारी हैं. मूलतः उत्तरप्रदेश के निवासी श्री सिंह बिहार कैडर के अधिकारी हैं. 40 वर्षीय सिंह ने इलेक्ट्रॉनिक्स में ग्रेजुएशन किया था.

वह अपने 26 साल के कैरियर में सफलतापूर्वक कई विभागों की जिम्मेवारी निभा चुके हैं. बिहार में सबसे पहले उनकी नियुक्ति भूमि और राजस्व विभाग में हुई.

उसके बाद वह ग्रामीण विभाग, कृषि विभाग, संस्कृति विभाग और वित्त विभाग में भी महत्वपूर्ण पदों पर रहे. उन्होंने कृषि, ग्रामीण विकास और मानव विकास जैसे विषयों में विभिन्न शिक्षण संस्थानों से प्रशिक्षण भी लिया है. उनकी हिंदी और अंग्रेजी के अलावा संस्कृत भाषा पर भी गहरी पकड़ है.

कुलदीप कुमार सारस्वत

कुलदीप कुमार सारस्वत को संघ लोकसेवा आयोग का निदेशक बनाया गया है. इससे पहले वह भारतीय दूरसंचार सेवा में उप-सलाहकार (आईटी) के पद पर कार्यरत थे.

पृथ्वीनाथ प्रसाद की नियुक्ति निदेशक के पद पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में की गई है. श्री प्रसाद 1985 बैच के आईएफएस अधिकारी हैं.

अरुणा शर्मा

अरुणा शर्मा की नियुक्ति दूरदर्शन के महानिदेशक पद पर कर दी गई है. इससे पहले उनकी नियुक्ति को लेकर विवाद पैदा हो गया था. वरिष्ठता के सवाल पर उनकी नियुक्ति को चुनौती दूरदर्शन के उपमहानिदेशक अशोक जेलखानी ने कैट में आपत्ति दर्ज करा कर दी थी. लेकिन अंततः इस पद पर अरुणा शर्मा की ही नियुक्ति के पीछे श्रीमती शर्मा की मजबूत नेटवर्किंग के कौशल का अहम रोल माना जा रहा है. उनके चयन पर सवालिया निशान लगाते हुए कैट ने इस पद के लिए उम्मीदवारों के साक्षात्कार की सिफारिश की थी. अतः इस पद के लिए 11 अन्य उम्मीदवारों का भी साक्षात्कार लिया गया, जिनमें अरुणा शर्मा को इस पद के लिए सबसे योग्य पाया गया. महाराष्ट्र की मूल निवासी शर्मा एमपी कैडर की आईएएस हैं. मध्यप्रदेश में विभिन्न पदों पर रहीं. उसके बाद वह केंद्र में प्रतिनियुक्ति पर दिल्ली आईं और मानवाधिकार आयोग में उपसचिव का कार्यभार संभाला. उन्होंने विभिन्न संस्थानों से कृषि विकास, वित्तीय प्रबंधन और ग्रामीण विकास में प्रशिक्षण लिया है.

क्योंकि हर निशान कुछ कहता है...

भारत में करीब 1200 रजिस्टर्ड पार्टियां हैं और हजारों निर्दलीय भी. ऐसे में हर उम्मीदवार केलिए चुनाव चिह्न तय करना चुनाव आयोग के बस का नहीं है. कुछ पार्टियों केनिशान तय हैं, तो आयोग कुछ चुनाव चिह्नों को अलग-अलग जगहों पर अलग उम्मीदवारों को थमाता है. बहरहाल चुनाव चिह्न भले कुछ भी मिले, आखिरी फैसला तो जनता ही करती है.

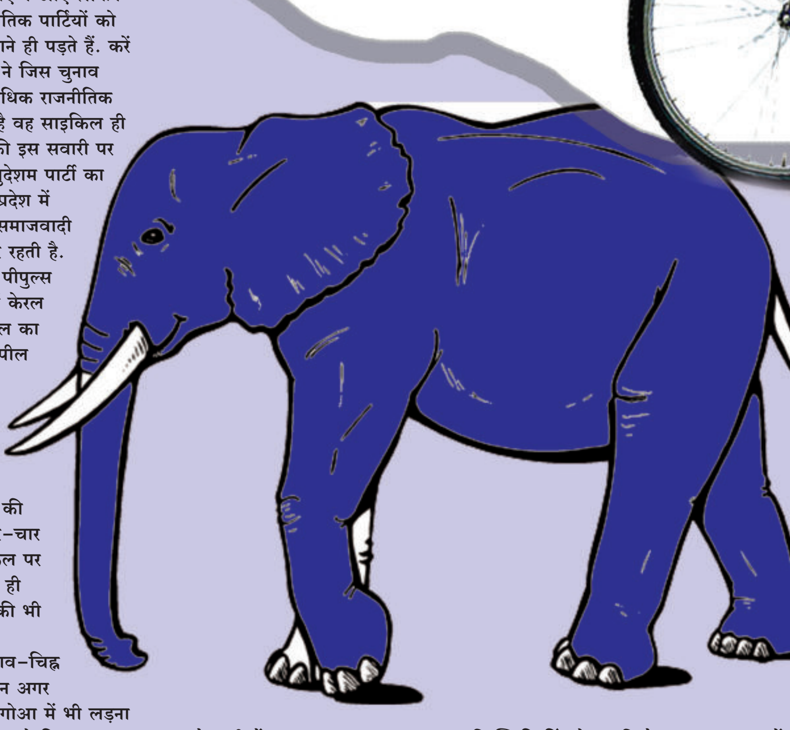

इस बार के बजट भाषण में प्रणव मुखर्जी ने कई बार हाथ का जिक्र किया. करें भी क्यों ना, आखिर हाथ पर बटन दबने से ही तो उनकी पार्टी सत्ता में आएगी. वैसे भी किसी राजनीतिक पार्टी के लिए उसके नेताओं, तमाम वायदों और घोषणाओं से भी अधिक अहमियत रखता है उसका चुनावी निशान किसी भी पार्टी के लिए उसका चुनाव-चिन्ह उसकी शक्ल की तरह होता है, लेकिन चुनावी मैदान में कभी-कभी हमशक्ल भी मिल जाते हैं. अब हाथी की बात ही करें, बहुजन समाज पार्टी के इस चुनाव निशान के ख़िलाफ उत्तर प्रदेश में भले ही भाजपा जोर लगा रही हो. लेकिन असम में भाजपा ने हाथी से ही हाथ मिला लिया है.

असल में हाथी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) में नई-नई शामिल हुई असम गण परिषद का चुनाव चिन्ह भी है. अब भाजपा की हालत यह है कि वह एक जगह हाथी को हराने की जुगत भिड़ा रही है दूसरी जगह उसी को जिताने की.

साइकिल चलानी आए न आए लेकिन भारत की कई राजनीतिक पार्टियों को साइकिल के गुण गाने ही पड़ते हैं. करें भी क्या? आयोग ने जिस चुनाव चिन्ह को सबसे अधिक राजनीतिक पार्टियों को बांटा है वह साइकिल ही है. आम आदमी की इस सवारी पर आंध्र में जहां तेलुगुदेशम पार्टी का हक है. वहीं उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी इस पर सवार रहती है. मणिपुर में मणिपुर पीपुल्स पार्टी और केरल में केरल कांग्रेस भी साइकिल का बटन दबाने की अपील करती नज़र आने वाली हैं. यूं तो साइकिल पर दो सवारियां चलती हैं लेकिन यहां तो लोकसभा की तरफ जाने को चार-चार एक बेचारी साइकिल पर सवार हैं. कुछ ऐसी ही हालत दो पत्तियों की भी हैं. जयललिता की अन्नाद्रमुक का चुनाव-चिह्न दो पत्तियां हैं लेकिन अगर अम्मा त्रिपुरा और गोआ में भी लड़ना चाहें तो उन्हें वहां अपने चिह्न का साथ छोड़ना पड़ेगा. त्रिपुरा में त्रिपुरा उपजाति जुबा समिति और गोआ में संयुक्त गोअन जनतांत्रिक पार्टी ने पहले ही इन पत्तियों पर अधिकार जमा रखा है. जो हाल जयललिता का है उनके धुर विरोधी करुणानिधि का हाल भी कुछ वैसा ही हैं. उनका उगता सूरज मणिपुर में फेडरल पार्टी ऑफ मणिपुर का चुनावी निशान है तो रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया का भी. बालासाहब ठाकरे और शिबू सोरेन के नामों से आप वाकिफ ही होंगे, अपनी अपनी पार्टियों में दोनों की ताकत निर्विवाद है. दोनों की स्थिति किंगमेकर की है. बालासाहब और गुरुजी राष्ट्रीय राजनीति में भले ही एनडीए और यूपीए के अलग अलग खेमों में हों, लेकिन निशाना दोनों एक-सा लगाते हैं. ऐसे में ताज़्जुब की बात नहीं है कि तीर-कमान के निशान पर दोनों का कब्ज़ा है. एक ही निशान पर चुनाव में उतर रहे दलों में फॉरवर्ड ब्लॉक, उत्तराखंड की हिल स्टेट पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी और आंध्र में एनटी रामराव की पत्नी लक्ष्मी पार्वती की पार्टी भी है. तीनों का चुनाव-चिन्ह सिंह है. सिंह के बारे में खास है कि हाथी के अलावा यह दूसरा ऐसा जानवर है, जिसे चुनाव आयोग ने चुनाव चिह्न के तौर पर इस्तेमाल किया हो. चुनाव-चिह्नों की लिस्ट में गिलास, टेलीफोन, छतरी जैसी रोजमर्रा की चीजें भी हैं तो रेलगाड़ी, नाव और बस भी. बदहाल बिहार में लोकजनशक्ति पार्टी का चुनाव-चिन्ह बंगला है तो सबसे अधिक विदेशी मुद्रा कमाने वाले गोआ की राजीव कांग्रेस पार्टी का चुनाव-चिन्ह झोपड़ी है. भारत में करीब 1200 रजिस्टर्ड पार्टियां हैं और हजारों निर्दलीय भी, ऐसे में हर उम्मीदवार के लिए चुनाव चिह्न तय करना चुनाव आयोग के बस का नहीं है. कुछ पार्टियों के निशान तय हैं तो आयोग कुछ चुनाव चिह्नों को अलग-अलग जगहों पर अलग उम्मीदवारों को थमाता है. शक्ल चाहे जो भी हो यानी चुनाव चिह्न भले कुछ भी मिले आखिरी फैसला तो जनता ही करती है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 3

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के - 2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

page 03 4/2/2009 1:29 AM Page 1

चुनाव, पार्टियां और कॉरपोरेट का चंदा

कौन कहता है कि दुनिया भर में मंदी छाई हुई है. हमारे नेताओं और दलों को आनेवाले आम चुनाव के लिए तैयारी करते देख वैश्विक मंदी की तेज़ी मंद पड़ जाए. इतना ही नहीं, अलग-अलग कॉरपोरेट घरानों से इन दलों को मिलने वाले चंदे की राशि भी अकूत है. लोकतंत्र के इस महापर्व में जिस तरह पैसे लुटाए जाते हैं, उससे कहीं भी हमारे देश की ग़रीबी का अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता.

व्यालोक

कुछ दिनों पहले टाटा कम्युनिकेशन के प्रमुख सुबोध भार्गव ने कॉरपोरेट जगत की एक मीटिंग में अपनी व्यथा उजागर की. उन्होंने विलाप करते हुए कहा कि नेताओं ने चंदे के लिए फोन कर उद्योगपतियों की नाक में दम कर दिया है. उनके इस बयान के बाद शांत पानी में जैसे हलचल मच गई. तुरंत ही खंडन-मंडन शुरू हो गया. नेताओं ने तो आदत के मुताबिक तुरंत अपना पल्ला झाड़ लिया, कुछ कॉरपोरेट दिग्गजों ने भी इस तरह के किसी दबाव से इनकार कर दिया. हालांकि कुछ नेताओं ने चुनाव के लिए स्टेट फंडिंग की राय देकर दबे सुर से ही सही, चंदे की बात स्वीकार कर ली. वैसे भी, चुनाव में जिस तरह पार्टियां बेहिसाब खर्च करती हैं, उसे देख कर यह यक़ीन करना निहायत ही मुश्किल होगा कि पार्टियां केवल काडर के या निजी चंदे से अपना चुनावी खर्च चला लेती हैं. ज़ाहिर तौर पर कॉरपोरेट जगत से चंदा हरेक दल लेता है. यह अलग बात है कि कॉरपोरेट जगत की पार्टियों के मामले में भी अपनी पसंद है. लेकिन कई व्यवसायी ऐसे हैं, जो सभी प्रमुख दलों को बराबरी से चंदा देते हैं. इसके अलावा पिछले चुनाव में मिले वोट और सीटों के आधार पर भी चंदे की पेशकश की जाती है. साथ ही, आनेवाले चुनाव में पार्टी के प्रदर्शन का अनुमान भी चंदे की थैली का बोझ बढ़ाता या घटाता है. सूचना के अधिकार का इस्तेमाल करते हुए राजनीतिक दलों द्वारा आधिकारिक रूप से घोषित चंदे की जो जानकारी हासिल की गई है, उसके ही आंकड़े चौंका देने वाले हैं. राजनीतिक दलों द्वारा हासिल चंदे की जानकारी देना उनकी इच्छा पर निर्भर करता है. ऐसे में उपलब्ध आंकड़े तो केवल संकेतात्मक ही हो सकते हैं. असलियत का तो केवल अंदाज़ा ही लगाया जा सकता है.

कौन कॉरपोरेट किस दल के है साथ

कांग्रेस को आदित्य बिड़ला समूह और टाटा समूह से, तो भाजपा को अनिल अग्रवाल के स्टरलाइट समूह और गुजरात के अदाणी समूह में धनराशि मिलती है. वीडियोकॉन समूह का धूत परिवार इन दोनों दलों को तो चंदा देता ही है. इसके अलावा महाराष्ट्र में शिवसेना को भी चंदा देता है. मायावती की बसपा को लेकर कम आंकड़े हैं. वैसे भी बहनजी अपने जन्मदिन पर ही जिस तरह चंदा उगाह लेती हैं, उससे तो अच्छे-अच्छे कॉरपोरेट समूह शरमा जाएं. बिड़ला जनरल इलेक्टोरल ट्रस्ट कांग्रेस और भाजपा, दोनों ही दलों को चंदा देता है. वहीं भाजपा के राजनीतिक हितों को सिलवासा स्थित पब्लिक एंड पॉलिटिकल अवेयरनेस ट्रस्ट से समर्थन हासिल है. इस ट्रस्ट से पार्टी को 2003 से 2007 तक 9.5 करोड़ रुपए का चंदा मिला. इस ट्रस्ट को अधिकतर धनराशि अनिल अग्रवाल के स्टरलाइट समूह से मिली. वर्ष 2000 में राजग सरकार के कार्यकाल में सार्वजनिक क्षेत्र की बाल्को इकाई की 51 फीसदी हिस्सेदारी खरीदनेवाली स्टरलाइट समूह ने अलग से एक करोड़ रुपए कांग्रेस को, तो 50 लाख रुपए भाजपा को दिए थे. वेणुगोपाल धूत के वीडियोकॉन समूह ने 10 करोड़ रुपए से ज़्यादा की राशि भाजपा, कांग्रेस और शिवसेना को दी थी. इसमें से 4.5 करोड़ रुपए कांग्रेस, 3.5 करोड़ रुपए भाजपा और 2.63 करोड़ रुपए शिवसेना को मिले. शिवसेना ने वेणुगोपाल के भाई राजकुमार धूत को राज्यसभा में भेजा है. टाटा समूह द्वारा इलेक्टोरल ट्रस्ट के माध्यम से चंदा दिया जाता है. 1999 के आम चुनाव से पहले पारदर्शी तरीके से राजनीतिक दलों को चंदा देने के लिए यह ट्रस्ट बनाया गया था. गुजरात का अदाणी समूह खासतौर पर भाजपा को चंदा देता रहा है. गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी के गौतम अदाणी से नज़दीकी संबंधों का फ़ायदा भाजपा को मिला है. पेशेवर प्रबंध के लिए जानी-पहचानी जाने वाली आईटीसी कंपनी राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व के आधार पर चंदा देती है.

चंदे के मामले में शिवसेना कई दलों से आगे

शिवसेना हालांकि महाराष्ट्र तक ही सीमित है, लेकिन मुंबई के वाणिज्यिक महानगरी होने और उग्र तेवरों के लिए पहचानी जाने वाली शिवसेना को चंदा देने में उद्योग घरानों की खासी दिल-चस्पी दिखाई देती है. घोषित चंदे की राशि में शिवसेना, भाजपा और कांग्रेस के बाद तीसरे क्रम पर है, जिसे 4.17 करोड़ रुपए का चंदा चार सालों में मिला है. वीडियोकॉन से करोड़ों रुपए के अलावा उसे टाटा से 60 लाख रुपए तो संस्कृति डेवलपर्स से 15 लाख रुपए का चंदा मिला है. एलएंडटी ने 35 लाख रुपए, तो आईटीसी ने 14 लाख रुपए शिवसेना को दिए हैं.

किसको मिला कितना चंदा

भाजपा	52.93
कांग्रेस	52.42
शिवसेना	04.17
पीएमके	02.86
समाजवादी पार्टी	02.45
तेलुगू देशम पार्टी	02.25

(सारे आंकड़े करोड़ रुपए में)

किसने कितना दिया चंदा

कंपनी	कांग्रेस	कंपनी	भाजपा
आदित्य बिड़ला	21.71	स्टरलाइट	10.00
वीडियोकॉन	4.5	अदाणी	4.00
टाटा	4.32	वीडियोकॉन	3.50
आईटीसी	1.45	आदित्य बिड़ला	2.96
एंबिएंस	1.05	टाटा	2.67
एलएंडटी	1.00	एलएंडटी	1.60
स्टरलाइट	1.00	अकीक	1.50
नवीन जिंदल	1.00	आईटीसी	1.38
बजाज	1.00	जीएमआर	1.00
एलएम थापर	0.70	विजय माल्या	1.00
रेनबैक्सी	0.65	पुंज लॉयड	1.00
टुडे हाउस	0.5	बजाज	1.00

(करोड़ रुपए में)

महिंद्रा एंड महिंद्रा ने कांग्रेस, भाजपा, शिवसेना और टीडीपी के बीच 2.2 करोड़ रुपए बांटे हैं. बजाज समूह ने कांग्रेस और भाजपा को एक करोड़ रुपए दिए हैं. कांग्रेस के सांसद नवीन जिंदल ने अपनी पार्टी के साथ ही विपक्षी दल भाजपा को भी 75 लाख रुपए का चंदा देने की उदारता दिखाई है. विजय माल्या की शॉ वैलेस ने भाजपा को एक करोड़ रुपए दिए हैं. वहीं दवा कंपनी रेनबैक्सी ने कांग्रेस को 65 लाख रुपए, तो भाजपा को 25 लाख रुपए का चंदा दिया है.

रीयल इस्टेट कंपनियों द्वारा दिया गया चंदा

एंबियेंस	1.05
सोमदत्त बिल्डर्स	0.75
पुंज लॉयड	1.00
टुडे हाउस एंड इन्फ्रास्ट्रक्चर्स	0.55
जुबिलेंट समूह	0.50
संस्कृति डेवलपर्स	0.50
रीयल इस्टेट एसोसिएशन	0.47

(करोड़ रुपए में)

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

कौन कहता है कि मंदी है, हमारे नेताओं की उड़ान तो देखो

कुछ लोग कहते हैं कि देश में मंदी है. उनसे एक ही गुज़ारिश है कि वे लोकशाही के महापर्व यानी आम चुनाव के खर्चों पर एक नज़र डाल लें. खासकर ऊंची उड़ान भरनेवाले नेताओं के उड़नखटोलों यानी हेलीकॉप्टर के खर्चे पर. अगले तीन महीनों में हरेक पार्टी के नामचीन नेता और नेत्री पूरे देश को रौंदेंगे, लेकिन हवाई पंखों पर सवार होकर. खर्चा. उसकी भला चिंता ही किसे है. कुल मिलाकर हवाई उड़ानों (जिसमें हेलीकॉप्टर ही नहीं, जेट विमान भी शामिल हैं) पर 200 करोड़ रुपए खर्च होंगे. यह भी केवल अनुमान है, क्योंकि कोई भी दल इस बात का खुलासा करने के लिए तैयार नहीं है कि आखिर वह कुल मिला कर कितने घंटों या दिनों के लिए हेलीकॉप्टर या जेट को किराए पर लेगा. वैसे एक इंजन वाले हेलीकॉप्टर का किराया 45,000 रुपए से लेकर एक लाख रुपए तक प्रति घंटा होता है. इसके अलावा अगर कुछ मित्र कॉरपोरेट जेट किराए पर देते हैं, तो उसका किराया तीन लाख रुपए प्रति घंटा होता है. इसी तरह दो इंजन वाले हेलीकॉप्टर का किराया दो से तीन लाख रुपए प्रति घंटा होता है. अब आप खुद अंदाज़ा लगा लीजिए कि सभी पार्टियां किस तरह चुनाव के इस दंगल में पैसों के धुर्रे उड़ाएंगी.

कुछ आंकड़ों पर बस नज़र डालने की ज़रूरत है :

- इस बार भाजपा कुल 25 हेलीकॉप्टर किराए पर लेगी. इसे सेंट्रल पूल में रखा जाएगा और नेताओं के क़द के हिसाब से इसका आवंटन किया जाएगा.
- कांग्रेस उससे एक क़दम आगे रह कर 26 हेलीकॉप्टर रखेगी. साथ में 10 छोटे जेट भी किराए पर लिए जाएंगे - सोनिया और राहुल के लिए.
- आरजेडी और सपा 3 से 4 हेलीकॉप्टर किराए पर लेगी.
- कुल मिलाकर करीब 100 हेलीकॉप्टर इस्तेमाल होंगे और 25 जेट. इनमें टाटा और अंबानी के भी हेलीकॉप्टर शामिल हैं. कुछ सरकारी हेलीकॉप्टर (जिन राज्यों में उपलब्ध हैं) का इस्तेमाल भी चुनाव के काम में होगा.

शाही प्रचार की ये डोर यहीं तक नहीं है. जनता की सेवा का दम भरनेवाले हमारे नेताओं को उन्हीं के बीच जाने पर जान का ख़तरा है, इसलिए वे बुलेटप्रूफ कारों में सफ़र करेंगे. इन कारों की कीमत 7 लाख रुपए से लेकर 30 लाख रुपए तक है. कीमत कार के मॉडल पर निर्भर करती है. इनमें सफारी, मोंटेरो, पज़ेरो से लेकर लैंड क्रूज़र तक शामिल हैं. अब तो यह माननीय नेताओं के क़द और उनकी अमीरी पर निर्भर करता है कि वह किस कार को बुलेटप्रूफ बनवाएंगे.

चुनाव में होनेवाले कुल खर्च का खुलासा अभी नहीं किया जा सकता, क्योंकि कोई पार्टी यह नहीं बता रही कि वह कितने दिनों या घंटों के लिए जेट या हेलीकॉप्टर का इस्तेमाल करेगी. वैसे अगर पिछले चुनाव के खर्च कुछ अनुमान दे सकें, तो आपको बता दें कि पिछले चुनाव में कांग्रेस ने हेलीकॉप्टर पर 8 करोड़ रुपए, तो भाजपा ने 76 लाख रुपए खर्च करने की बात कबूल की है. हम केवल इतना और बता दें कि इस बार के चुनाव में हरेक तरह से 50 फीसदी अधिक खर्च होने का अनुमान है. तो, आप खुद अनुमान लगा सकते हैं कि इस चुनावी आंधी में रुपयों की कितनी गर्द उड़ने वाली है.

क्या आप अब भी कहेंगे कि देश या दुनिया में मंदी है.

page 4 4/2/2009 1:34 AM Page 1

ग्रह-नक्षत्र और लोकसभा सीटें

बड़े राज्य

राज्य	कुल सीटें	कांग्रेस	भाजपा	अन्य
उत्तर प्रदेश	80	6–8	13–15	बसपा: 32–35 सपा: 18–22
महाराष्ट्र	48	7–9	18–21	एनसीपी: 7–10 शिवसेना: 2 आरपी: 1
आंध्र प्रदेश	42	12–14		टीडीपी: 17–20 टीआरएस: 6–7
प बंगाल	42	3–4		वाम: 29–31, टीसी: 6–8
बिहार	40	1	6–8	जेडीयू: 16–19 आरजेडी: 8–10
तमिलनाडु	39	4–5		अन्नाद्रमुक: 16–19 द्रमुक: 7–9

मंझोले राज्य

राज्य	सीटें	कांग्रेस	भाजपा	अन्य
मध्य प्रदेश	29	6–7	20–22	1–2
कर्नाटक	28	5–7	18–20	जेडीएस: 2, अन्य: 1
गुजरात	26	4–6	19–21	1
राजस्थान	25	12–14	11–13	1
उड़ीसा	21	4–5	6–7	बीजद: 7–8, अन्य: 1
केरल	20	7–8		वाम: 10–12, अन्य: 1

छोटे राज्य

राज्य	सीटें	कांग्रेस	भाजपा	अन्य
झारखंड	14	4–5	6–7	झामुमो: 2, अन्य: 1
असम	14	5	3–4	अगप: 4–5, अन्य: 1
पंजाब	13	5–6	2–3	अकाली दल: 5–6
छत्तीसगढ़	11	3–4	7–8	1
हरियाणा	10	6–7		इनेलोद: 3–4
दिल्ली	7	4–6	2–3	
जम्मू-कश्मीर	6	2		एनसी: 2, पीडीपी: 1
उत्तर-पूर्व/त्रिपुरा	9/2	5–6		अन्य: 3–4, त्रिपुरा में वाम: 2
उत्तराखंड	5	1	2–3	सपा: 1, अन्य: 1
हिमाचल प्रदेश	4	1	3	
गोआ	2	1	1	
केंद्रशासित प्रदेश	8	1		3
कुल	545	111–130 (–5)	137–159	

चमकेंगे तीसरे मोर्चे के तारे

ग्रह-नक्षत्रों की चाल बड़ी अप्रत्याशित होती है. उसी तरह राजनीति की बिसात पर भी बड़ी आड़ी-टेढ़ी चालें चली जाती हैं. इस बार के आम चुनाव में भी नतीजे बिल्कुल साफ-साफ आने के संकेत नहीं हैं. हालांकि चुनाव के नतीजे दो प्रमुख राष्ट्रीय दलों को झटका ही देंगे.

अभी भले ही कोई भी दल बड़े-बड़े दावे कर रहा हो, लेकिन कुल मिलाकर कांग्रेस और भाजपा के हाथ से सत्ता अभी दूर ही है. कांग्रेस कुल मिलाकर 111 से 130 सीटों तक सिमट जाएगी, जबकि भाजपा को महज 137 से 159 सीटों तक ही संतोष करना होगा. जाहिर है कि कुंजी क्षेत्रीय दलों के हाथ में ही होगी. मायावती को उत्तर प्रदेश में 35 सीटें आ सकती हैं. इसके अलावा वह बाहर के राज्यों में भी कुछ सीटें जीत सकती हैं, लेकिन कुल मिलाकर प्रधानमंत्री पद का सपना पूरा करने लायक सीटें शायद ही उनके पास हो पाएं. आंध्रप्रदेश एक महत्वपूण राज्य है, जहां टीडीपी 17 से 20 सीटें लाकर अहम स्थिति में होगी. इसी तरह बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, मध्यप्रदेश और राजस्थान जैसे राज्य चुनाव के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं. इनमें से कर्नाटक में भाजपा की यथास्थिति बनी रहेगी, तो मध्यप्रदेश और राजस्थान में उसे नुक़सान उठाना पड़ेगा. बिहार में भाजपा का सहयोगी जेडीयू लालू-पासवान गठजोड़ की वजह से शायद कुछ मुश्किल में पड़ जाए.कुल मिलाकर इस बार सरकार की कुंजी छोटे दलों के हाथ में ही होगी. देखना यह होगा कि कौन-सा दल सौदा करने की कितनी बेहतर हालत में होता है. साथ ही यह भी देखना होगा कि कांग्रेस या भाजपा कितने दलों को अपनी छतरी के नीचे लाने में सफल होते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

भारत में चुनावों के दौरान अब तक बुलंद हुए नारे

चुनाव में नारों का बड़ा महत्व होता है. जितना तीखा हो, उतनी ही धार पैदा करता है. इस मामले में सीपीआई ने नारा दिया था, *लाल किले पर लाल निशान, मांग रहा है हिंदुस्तान.* आजादी के शुरुआती वर्षों में जवाहरलाल नेहरू पार्टी और सरकार में अपनी समान पकड़ बना चुके थे. उनके समर्थकों ने नारा दिया, *नेहरू के हाथ मजबूत करो.*

उन दिनों जनसंघ विपक्ष में बैठने वाली कम महत्व वाली पार्टी थी, और इस पार्टी का चुनाव चिह्न दीपक था. इसलिए कांग्रेसी व्यंग्य के साथ कहा करते थे, *इस दीये में तेल नहीं है, यह देश में कैसे उजाला लाएगी.*

दैनिक समस्याओं से कई मुद्दे नारे का रूप लेते रहे हैं. बेरोज़गारी, ग़रीबी, महंगाई जैसे मुद्दे चुनावी नारों की शक्ल अख़्तियार करते रहे हैं. मुलाहिज़ा फरमाइए, *रोज़ी-रोटी दे न सके जो, वह सरकार निकम्मी है, जो सरकार निकम्मी है, उसे हमें बदलना* है. सन 1967 तक साझा चुनाव होते थे, इसलिए चुनावी नारों में स्थानीय व प्रांतीय मुद्दों का हावी होना लाजमी था.

सन 1967 में उत्तरप्रदेश में छात्रों ने कुछ ज़्यादा ही तीखे चुनावी नारे लगाए. जैसे – *उत्तरप्रदेश में तीन चोर, मुंशी गुप्ता युगल किशोर.* उन दिनों छात्र आंदोलन की वजह से कई छात्र जेलों में बंद थे. तब छात्रों ने नारा दिया – *जेल के फाटक टूटेंगे, साथी हमारे छूटेंगे.* पिछड़े वर्ग की आवाज़ बुलंद करते हुए सोशलिस्ट पार्टी ने नारा दिया, *संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़े पावें सौ में साठ.* गोरक्षा आंदोलन को तेज़ करते हुए जनसंघ ने नारा दिया, *गौ हमारी माता है, देश-धरम का नाता है.*

इंदिरा गांधी के आते-आते बहुत कुछ व्यक्ति केंद्रित हो गया था, तब नारा चुनावी नारा बना, *इंदिरा हटाओ, देश बचाओ.* दूसरी तरफ इंदिरा ने नारा दिया, *वे कहते हैं इंदिरा हटाओ, मैं कहती हूं गरीबी हटाओ.* आपातकाल के बाद आम चुनाव में नारों का सर्वाधिक ज़ोर रहा. इस दौरान जो आकाशफाड़ू नारे लगे, वे इस प्रकार थे, *सन सतहत्तर की ललकार, दिल्ली में जनता सरकार.* और, *संपूर्ण क्रांति का नारा है, भावी इतिहास हमारा है... फांसी का फंदा टूटेगा, जॉर्ज हमारा छूटेगा... नसबंदी के तीन दलाल, इंदिरा संजय बंसीलाल.*

सन 1980 में कांग्रेस ने नारा दिया, *जात पर न पात पर, मुहर लगेगी हाथ पर.* इसी चुनाव में इंदिरा के समर्थन में और भी वज़नी नारे लगाए गए, *आधी रोटी खाएंगे, इंदिरा को बुलाएंगे.* इंदिरा की हत्या के बाद सन 84 में राजीव गांधी के समर्थन में जो नारे लगे, वो इस प्रकार थे, *पानी में और आंधी में, विश्वास है राजीव गांधी में.* हालांकि यह विश्वास सन 89 में चूर-चूर हो गया और नारे लगे, *बोफोर्स के दलालों को एक धक्का और दो.* दूसरी तरफ वीपी सिंह के समर्थन में नारे लगे, *राजा नहीं फकीर है, देश की तकदीर है.* इसके जवाब में नारे लगे, *फकीर नहीं राजा है, सीआईए का बाजा है.*

सन 1996 में अटलबिहारी वाजपेयी के पक्ष में नारे लगे, *अबकी बारी अटल बिहारी.* अगले चुनाव यानी सन 2004 में *इंडिया शाइनिंग* का नारा लगा. फिर भी वे चुनाव हार गए. तब कांग्रेस ने नारा दिया था, *कांग्रेस का हाथ, आम आदमी के साथ.* इस बार कांग्रेसी *कांग्रेस की पहचान, विकास और निर्माण* पर ताल ठोंक रहे हैं.

कुछ और बुलंद नारे इस प्रकार हैं, *एक शेरनी सब लंगूर, चिकमंगलूर चिकमंगलूर... मिले मुलायम कांशीराम, हवा में उड़ गए जय श्रीराम... तिलक तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार...* नारे और भी हैं, फिलहाल इतना ही.

(दीवान मेल ग्रुप पर जारी किया गया लेख)

ब्रजेश कुमार झा
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कांग्रेस के नारे

- हवा नहीं अब आंधी दो, हमें प्रियंका गांधी दो
- जात पर न पात पर, मोहर लगेगी हाथ पर
- आधी रोटी खाएंगे, इंदिरा को बुलाएंगे

अन्य पार्टियों के नारे

- ब्राह्मण शंख बजाएगा, हाथी चलता जाएगा
- अटल बिहार कमल निशान, मांग रहा है हिंदुस्तान
- राजा नहीं फकीर है, देश की तक़दीर है

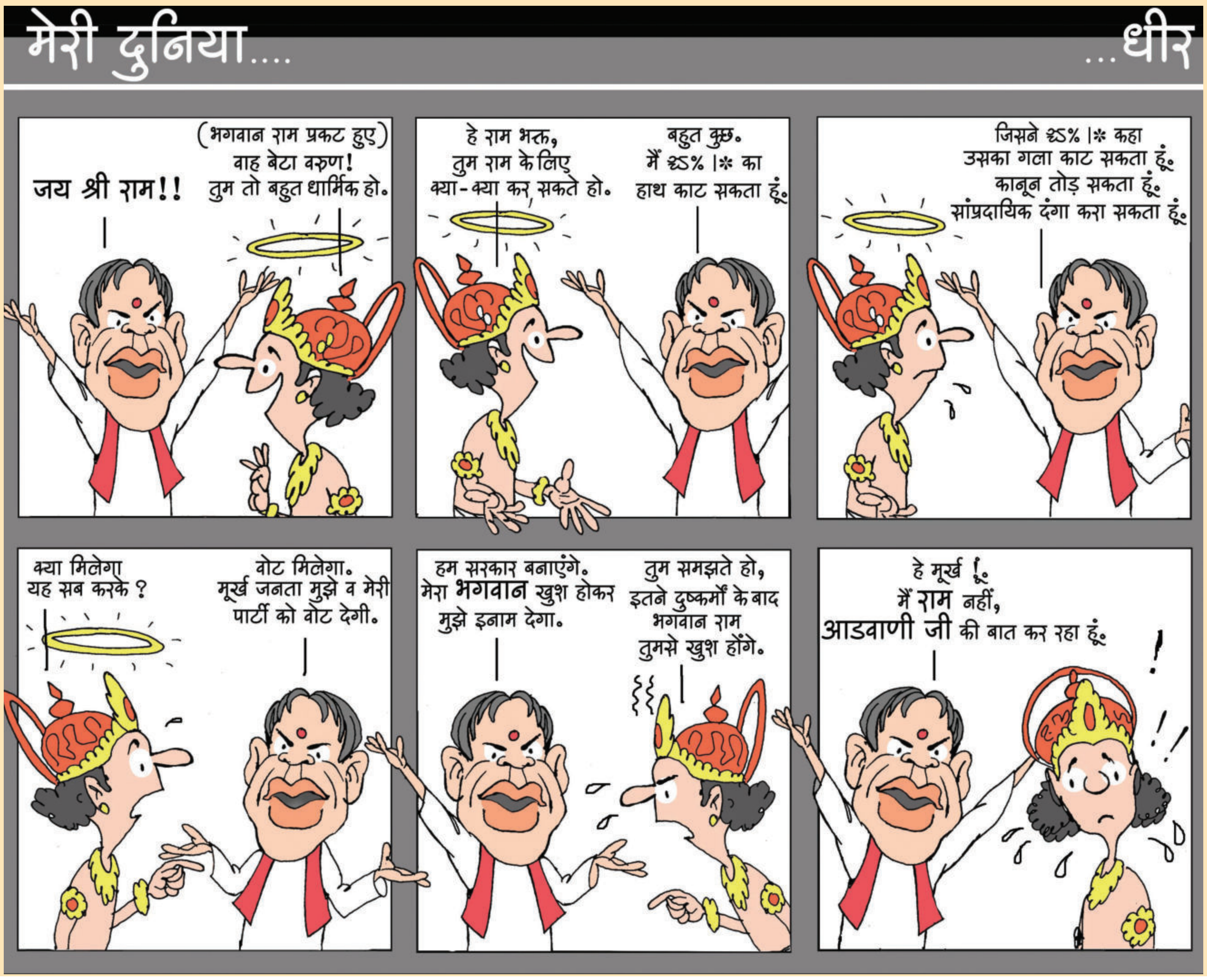

blog.lkadvani.in

LK Advani in the Blogosphere

आडवाणी को ख़त्म करने की साज़िश

आदरणीय भावी प्रधानमंत्री जी... आप इन दिनों भाजपा की किसी ऐसी चुनावी सभा में जाएं या पार्टी की मीटिंग में, जहां आडवाणी भी मौजूद हों, तो उन्हें इसी संबोधन से संबोधित किया जाता है. वे इस पर कोई एतराज़ भी नहीं जताते. उनकी गैरमौजूदगी में भी लोग उनका ज़िक्र इसी पद-संबोधन से करते हैं. भारतीय राजनीति के इतिहास में पहली बार यह पद सृजित हुआ है. कई टेलीविजन चैनलों ने भी आडवाणी को पीएम इन वेटिंग कहना शुरू कर दिया है. अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव में जीते हुए उम्मीदवार को प्रेसिडेंट इलेक्ट कहा जाता है, क्योंकि चुनाव जीतने और शपथ लेने के बीच तीन महीने का फ़ासला होता है. भारत में तो चुनाव जीतने केबाद ही फ़ैसला होता है कि प्रधानमंत्री कौन बनेगा. हमारी राजनीति ऐसी है कि शपथ ग्रहण करने केएक दिन पहले तक कहना मुश्किल है कि प्रधामंत्री कौन बनेगा. कभी-कभी तो खुद प्रधानमंत्री की शपथ लेने वाले नेता को भी पता नहीं होता. जैसा कि पिछली बार मनमोहन सिंह के साथ हुआ था. इसलिए लगता है कि जब भाजपा के नेता या टेलीविज़न चैनलों ने पहले से ही आडवाणी को प्रधानमंत्री घोषित कर दिया है, तो सचमुच कोई तैयारी होगी. हालांकि जिस तरह से राजनीति करवट ले रही है, उससे तो यही लगता है कि ये लोग देश के सर्वोच्च नेता एलके आडवाणी केसाथ मज़ाक़ कर रहे हैं. कहीं ये आडवाणी नाम की शख़्सियत के साथ कोई साज़िश तो नहीं है?

आजकल इंटरनेट अख़बार और टीवी पर लालकृष्ण आडवाणी छाए हुए हैं. जगह-जगह बड़ी-बड़ी होर्डिंग, इंटरनेट की हर दूसरी साइट पर हवा में हाथ हिलाते आडवाणी की तस्वीर है. साथ में लिखा है - आडवाणी फॉर पीएम. जिस तरह अमेरिका में ओबामा का चुनावी प्रचार हुआ, उसी की नकल भाजपा कर रही है. भाजपा ने आडवाणी को पीएम के रूप में न सिर्फ पेश किया है बल्कि यूं कहें कि उन्हें चुनाव से पहले ही प्रधानमंत्री घोषित कर दिया है. ऐसा प्रचार तो दश के सर्वमान्य नेता अटल बिहारी वाजपेयी के लिए भी नहीं हुआ था. इसमें कोई शक नहीं है कि आडवाणी एनडीए ही नहीं, देश के बड़े नेताओं में से एक हैं. हर दल के नेता ऐसा मानते हैं. लेकिन भाजपा के नेताओं को ही आडवाणी के इस क़द पर शक है. शायद आडवाणी जी को खुद भी.

भाजपा के चुनाव प्रचार के तरीक़े से लगता है कि भाजपा नेताओं की नज़र में आडवाणी देश के बड़े नेता नहीं हैं. उन्हें इस बात पर भी शक है कि अगर कांग्रेस हारती है, तो आडवाणी ही प्रधानमंत्री बन सकेंगे. रणनीति बनाने वाला चाहे कोई हो, उसने इस चुनाव प्रचार में इतना आक्रामक रवैया अपनाया है कि पीछे लौटने की राह ही नहीं बची. यह किसी ने नहीं सोचा कि अगर आडवाणी हार गए, तो न सिर्फ पूरे प्रचार की मिट्टी पलीद होगी बल्कि आडवाणी खुद हंसी के पात्र बन जाएंगे. कोई यह भी कहने वाला नहीं बचेगा कि चुनाव में हार-जीत अलग है, देश के सबसे बड़े नेता आडवाणी ही हैं. पीएम इन वेटिंग जैसी ब्रांडिंग से लगता है कि भाजपा के नेता इस चुनाव में आडवाणी नाम की शख्सियत को ख़त्म करना चाहते हैं. क्या इस तरह से प्रधानमंत्री की रेस में हिस्सा लेने और हार जाने के बाद वे एक आम सांसद की भूमिका में सहज रह पाएंगे. राजनीति की रीति है कि जो जीता वही सिकंदर और जो हार गया, वह लोगों की नज़रों से ओझल. हारा हुआ उम्मीदवार लोकप्रियता के शिखर से सीधे ज़मीन पर आ जाता है. इतिहास में ऐसी कई कहानियां हैं, जिसमें चुनाव के बाद हारे हुए उम्मीदवार को गहरा सदमा लगा. कइयों ने सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले लिया, तो कई गुमनामी की दुनिया में खो गए. लॉस एंजलिस के मशहूर मनोवैज्ञानिक रॉबर्ट आर बटरवर्थ के मुताबिक जब कोई राजनेता चुनाव हारता है, तो उसकी भावना वैसे ही आहत होती है, जैसे किसी को संबंध टूटने से तक़लीफ़ होती है. वे कहते हैं कि अक्सर हारे हुए उम्मीदवार उदासीनता, निराशा और आत्मदया के शिकार हो जाते हैं. कुछ उम्मीदवार हार को स्वीकार नहीं कर पाते. उन्हें लगता है कि वह चुनाव हारे ही नहीं. ऐसा पिछली बार भाजपा के साथ हुआ. चौदहवीं लोकसभा में हारने के बाद कई महीने तक भाजपा हार को पचा नहीं सकी. इतिहास में चार्ल्स गुडइयर, रिचर्ड निक्सन, मोज़ार्ट और हूबर्ट हमी जैसे नाम हैं, जिन्होंने हार के बाद फिर वापसी की. इनके पास वापस लौटने के लिए समय था. आडवाणी 2014 के चुनाव तक 86 साल के हो जाएंगे. जीवन के उस पड़ाव पर पहुंच जाएंगे, जहां वापसी का हौसला तो हो सकता है, लेकिन शरीर शायद साथ न दे. उम्र की उस दहलीज पर पहुंच जाएंगे, जहां से नई शुरुआत नहीं की जा सकती. भाजपा ने ओबामा के प्रचार की नकल तो कर ली, पर सही आकलन न कर सकी. आडवाणी की वेबसाइट के जरिए भाजपा ने युवाओं को जोड़ने का जो अभियान चलाया, उसकी हवा निकल चुकी है. पूरे देश में अब तक क़रीब 8 हज़ार लोग ही भाजपा के साथ जुड़े हैं. वेबसाइट के जरिए अभियान चलाने की योजना तो बर्बाद हो गई. अब भाजपा के नेताओं को कौन समझाए कि चुनाव में कूदने से पहले अमेरिका की जनता बराक ओबामा को जानती तक नहीं थी. इसलिए प्रचार के जरिए ओबामा की ब्रांडिंग हो सकी. उन्हें एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में पेश करने में सफलता मिली. लेकिन आडवाणी को देश की पूरी जनता जानती है.

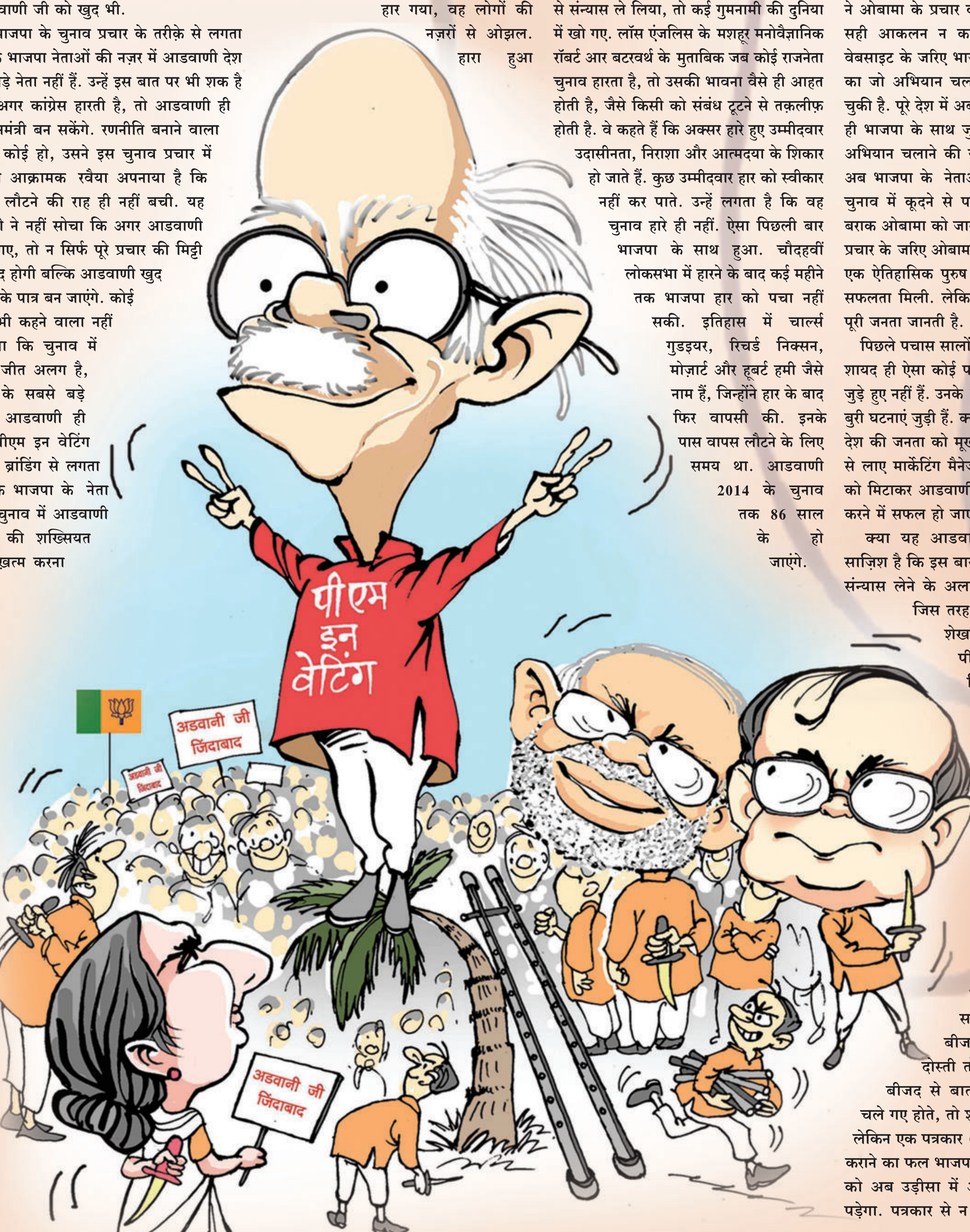

पिछले पचास सालों में भारत की राजनीति का शायद ही ऐसा कोई पन्ना हो, जिससे आडवाणी जुड़े हुए नहीं हैं. उनके नाम के साथ कई अच्छी-बुरी घटनाएं जुड़ी हैं. क्या भाजपा के रणनीतिकार देश की जनता को मूर्ख समझते हैं कि अमेरिका से लाए मार्केटिंग मैनेजर पचास साल की यादों को मिटाकर आडवाणी को एक नए रूप में पेश करने में सफल हो जाएंगे?

क्या यह आडवाणी के ख़िलाफ़ एक साज़िश है कि इस बार हार जाएं, तो उनकेपास संन्यास लेने के अलावा कोई रास्ता न बचे. जिस तरह अटल जी और भैरोंसिंह शेखावत को भाजपा की नई पीढ़ी के नेताओं ने भुला दिया, क्या उसी तरह आडवाणी के राजनैतिक जीवन का अंत होगा. भाजपा दफ्तर के वातानुकूलित दफ्तर में बैठने वाले नेताओं का यह खेल समझना ज़्यादा मुश्किल नहीं है. उन्होंने आडवाणी का नाम आगे बढ़ा दिया और भाजपा को कमज़ोर करने में जुट गए. कल्याण सिंह इन नेताओं की वजह से ही साइकिल पर सवार हो गए. बीजद ने ग्यारह साल की दोस्ती तोड़ ली. उड़ीसा में अगर बीजद से बातचीत करने खुद जेटली चले गए होते, तो शायद बात बन भी जाती, लेकिन एक पत्रकार (चंदन मित्रा) से राजनीति कराने का फल भाजपा को महंगा पड़ा. भाजपा को अब उड़ीसा में अकेले ही चुनाव लड़ना पड़ेगा. पत्रकार से न राजनीति करानी चाहिए और न रानीतिज्ञ से पत्रकारिता. आप उन्हें टिकट दें, अपने प्रचार के लिए उनका इस्तेमाल करें, पर अगर राजनीति कराएंगे तो आपके सामने उड़ीसा जैसे हादसे होंगे ही.

शिवसेना, जो भाजपा की सबसे पुरानी साथी है, आडवाणी जी को प्रधानमंत्री मानने से हिचक रही है. बिहार में जेडीयू के साथ मनमुटाव जगजाहिर है. जिन दलों ने पिछली बार एनडीए को समर्थन दिया था, उनमें ज़्यादातर दलों ने तीसरे मोर्चे का दामन थाम लिया है. चुनाव से पहले अभी तक जो संकेत मिल रहे हैं, वह भाजपा के लिए सकारात्मक नहीं दिखते. ऐसे में अगर कोई यह सवाल उठाए कि अब आडवाणी जी का क्या होगा, तो यह सवाल ग़लत नहीं होगा.

राजनीति में चमत्कार नहीं होता और न ही कोई चीज़ बेवजह होती है. यह बात भी सही है कि भाजपा में रणनीतिकारों की कमी नहीं है. ऐसा नहीं हो सकता है कि आडवाणी फॉर पीएम का इतना बड़ा प्रचार अभियान बनाते वक्त किसी ने आज के हालात के बारे में विचार न किया हो. गठबंधन की राजनीति में किसी भी दल को हल्के में नहीं लिया जा सकता. जिस वक्त इस प्रचार की प्लानिंग हुई होगी, उस वक्त किसी भी दल के साथ सीटों के बंटवारे को लेकर अंतिम फ़ैसला नहीं हुआ था. भाजपा यह भी जानती है कि वह अकेले अपने दम पर सरकार नहीं बना सकती. इससे अंदाज़ा लग सकता है भाजपा की दूसरी पंक्ति के नेताओं ने इस तरह की परिस्थितियों को जानबूझ कर नजरअंदाज़ कर दिया.

> **क्या भाजपा के रणनीतिकार देश की जनता को मूर्ख समझते हैं कि अमेरिका से लाए मार्केटिंग मैनेजर पचास साल की यादों को मिटाकर आडवाणी को एक नए रूप में पेश करने में सफल हो जाएंगे?**

राजनीति का एक और पहलू है. इस खेल में बहुत जल्द मति मारी जाती है. लोग एक ही ग़लती बार-बार करते हैं. पिछली बार एनडीए ने पांच साल तक शासन किया. अच्छा काम किया. लेकिन चुनाव नज़दीक आते ही उन पर इंडिया शाइनिंग का भूत सवार हो गया. न चमकने वाले भारत ने भाजपा की चमक को दुत्कार दिया.

भारत अमेरिका नहीं है. यहां टीवी पर, इंटरनेट पर या अख़बारों में प्रचार करके चुनाव नहीं जीता जा सकता है. चुनाव जीतने के लिए सामाजिक हक़ीक़त को पहचानने की ज़रूरत है. लेकिन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नारा बुलंद करने वाली इस पार्टी को अमेरिकन तरीका ज़्यादा भाता है. भाजपा ने यह भूल दूसरी बार की है. वह भूल गई कि अमेरिका और भारत के चुनाव में बुनियादी फर्क है. वहां सत्ता के केंद्र में राष्ट्रपति होता है, लेकिन भारत में प्रधानमंत्री. वहां के लोग राष्ट्रपति को चुनते हैं. भारत में प्रधानमंत्री को लोकसभा के सांसद चुनते हैं. लोग प्रधानमंत्री को नहीं, अपने सांसद को वोट देते हैं. यही वजह है कि पिछली बार हर चुनाव सर्वेक्षण में प्रधानमंत्री के नाम पर अटल बिहारी वाजपेयी आगे रहे, लेकिन भाजपा चुनाव हार गई. भाजपा के रणनीतिकारों को अगर आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाना था, तो पार्टी को मज़बूत करना था. एनडीए में ज़्यादा से ज़्यादा पार्टियों को शामिल करने की तैयारी करनी थी. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. पार्टी केबड़े-बड़े नेताओं को दरकिनार कर दिया गया. एनडीए में नए दलों को शामिल करना तो दूर, पुराने साथियों को एक साथ रखने में विफल रहे. भाजपा के लोग ही बताते हैं कि न जाने कहां से यह प्रथा चल पड़ी है कि इस्तेमाल करो और रास्ते से हटा दो. पार्टी की यह अघोषित कार्यप्रणाली बन गई है. क्या आडवाणी जी के साथ यही हो रहा है? बीजेपी का चुनाव प्रचार किसी इवेंट मैनेजमेंट की तरह चल रहा है. सब कुछ हो रहा है, लेकिन कुछ भी नहीं हो रहा है. कुछ दिनों पहले भाजपा के रणनीतिकारों ने देश के बड़े-बड़े उद्योगपतियों की मुलाक़ात आडवाणी से करा दी. ख़बर बन गई कि देश के उद्योगपति आडवाणी को प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहते हैं. अब इन लोगों को कैसे समझाया जाए कि उद्योगपति पैसे दे सकते हैं, लेकिन वोट तो देश की जनता देती है. उद्योगपति आडवाणी फॉर पीएम के प्रचार के लिए पैसे तो दे सकते हैं, लेकिन लोगों को पोलिंग बूथ तक लाकर भाजपा को वोट देने की गारंटी नहीं दे सकते. भाजपा के नेताओं को अगर आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाना था, तो इंटरनेट के बजाए भारत के गांवों में रहने वाले किसानों और ग़रीबों को अपने साथ लाने की रणनीति बनानी थी. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी और भैंरोसिंह शेखावत ने भाजपा को दो सासंदों की पार्टी से राष्ट्रीय पार्टी बना दिया. ये तीनों एक दूसरे के प्रतियोगी रहे. इन लोगों ने किसी साज़िश के तहत एक दूसरे को दरकिनार करने की कोशिश नहीं की. इनमें मतभेद तो हमेशा रहा, लेकिन मनभेद कभी नहीं हुआ. यही वजह है कि पार्टी मजबूत हुई. अब भाजपा का चेहरा बदला है. दूसरी पंक्ति के नेता पहली पंक्ति में आने को बेकरार हैं. अटल जी और भैरोसिंह जी अपनी उम्र और स्वास्थ्य की वजह से सक्रिय राजनीति से दूर हैं. दूसरी पंक्ति के नेताओं की राह में सिर्फ आडवाणी जी बचे हैं. हो सकता है कि 2009 लोकसभा चुनाव में आडवाणी जी पितृघात के शिकार हों.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

त्रिकोणीय होगा झारखंड का चुनावी मुक़ाबला

बाबूलाल मरांडी की पार्टी बढ़ाएगी मुश्किलें

रीतिका सोनाली

पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांडी की पार्टी झारखंड विकास मोर्चा के उम्मीदवार लोकसभा चुनाव में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के लिए परेशाानियों का सबब बन गए हैं. झारखंड विकास मोर्चा ने 12 सीटों पर अपने प्रत्याशी घाोषित कर दिए हैं. रांची और धनबाद सीटों पर प्रत्याशी की घोषणा नहीं हुई है. झाविमो ने कई लोकसभा क्षेत्रों के लिए मज़बूत प्रत्याशी का एलान किया है, जिससे आमतौर पर यूपीए और एनडीए के बीच होनेवाला सीधा मुक़ाबला अभी से ही त्रिकोणीय नज़र आने लगा है. कोडरमा, जमशेदपुर, हजारीबाग, गोड्डा, लोहरदग्गा, खूंटी, दुमका, राजमहल, गिरीडीह, चतरा, पलामू और चाईबासा सीटों के लिए प्रत्याशियों की दावेदारी शुरू हो गई है. कोडरमा से बाबूलाल मरांडी के खड़े होने से दोनों प्रमुख गठबंधन यूपीए-एनडीए खेमे ने अपने उम्मीदवारों का एलान नहीं किया है. राजद को भी एक दमदार उम्मीदवार की तलाश है. जमशेदपुर से झाविमो ने पूर्व विधायक अरविंद सिंह उर्फ मलखान सिंह को उम्मीदवार बनाया है और भाजपा ने अर्जुन सिंह को. भाजपा को चिंता है कि झाविमो का प्रत्याशी यदि दमखम से लड़ता है, तो पार्टी उम्मीदवार परेशानी में पड़ सकता है. हालांकि यूपीए सांसद और झामुमो के प्रत्याशी सुमन महतो के ख़िलाफ़ क्षेत्र की जनता में आक्रोश होने के कारण भाजपा अपनी जीत सुनिश्चित मान रही है. हजारीबाग सीट से झाविमो शराब व्यवसायी ब्रजकिशोर जायसवाल को टिकट देने पर सोच रही है, जिससे भाजपा प्रत्याशी यशवंत सिन्हा की मुश्किलें बढ़ गई हैं. इस सीट पर भाकपा के राज्य सचिव भुवनेश्वर मेहता भी चुनाव मैदान में डटे हुए हैं, जबकि झाविमो ने भी यहां से लड़ने का फैसला किया है. गोड्डा संसदीय क्षेत्र से झाविमो की ओर से सांसद प्रदीप यादव को उम्मीदवार बनाया गया है, जबकि भाजपा ने यहां से निशिकांत दूबे और कांग्रेस ने अपने निवर्तमान सांसद फुरकान अंसारी को ही टिकट दिया है. यहां भी कांग्रेस, भाजपा और झाविमो के बीच ही मुख्य मुक़ाबला है. लोहरदग्गा से झाविमो की ओर से शिक्षाविद डॉ. बहुरा एक्का को उम्मीदवार बनाया है, जिन्हें इस क्षेत्र की स्थितियों का पूरा ज्ञान है. इससे कांग्रेस सांसद केंद्रीय मंत्री रामेश्वर उरांव को कड़ी टक्कर मिल सकती है. भाजपा की ओर से सुदर्शन भगत चुनाव लड़ेंगे. खूंटी संसदीय सीट से झाविमो ने पूर्व विधायक थियोडर किडो को उम्मीदवार बनाया है. यहां कांग्रेस की ओर से विधायक नियेल तिर्की, भाजपा की ओर से कड़िया मुंडा हैं, जबकि झारखंड पार्टी की ओर से एन. होरो को उम्मीदवार बनाया गया है. इस सीट पर चतुर्कोणीय मुक़ाबले की संभावना है. दुमका से झाविमो ने रमेश हेम्ब्रम को टिकट दिया है. झामुमो से शिबू सोरेन खुद इस सीट से लड़ेंगे. भाजपा की ओर से सुनील सोरेन को उम्मीदवार बनाया है. राजमहल से झाविमो ने सोम मरांडी को खड़ा किया है. वे पहले ही भाजपा से सांसद रह चुके हैं. भाजपा ने पूर्व मंत्री देवीधर बेसरा को उम्मीदवार बनाया है. दूसरी ओर झामुमो सांसद हेमा मुर्मू ही फिर से उम्मीदवार होंगे. झामुमो की उम्मीदवारी से नाराज़ क्षेत्र के पूर्व सांसद और कांग्रेस विधायक थॉमस हांसदा ने भी निर्दलीय चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया है. झारखंड में झामुमो-कांग्रेस को कांग्रेस के गैर-आदिवासी और झामुमो के आदिवासी जनाधार की एकता से इस गठबंधन को ताक़त मिलेगी. झामुमो नेता शिबू शोरेन की छवि बिगड़ी है, जिसका नुकसान गठबंधन को उठाना पड़ेगा. साथ ही कांग्रेस समर्थित कोड़ा और सोरेन सरकार बेहद अलोकप्रिय रही. भाजपा-जदयू गठबंधन के पास कई क़द्दावर नेता हैं. हाल तक रही गैर-भाजपा सरकार के ख़िलाफ़ लोगों में नाराज़गी है, इसका वह फायदा उठा सकती है. इसके उलट बाबूलाल मरांडी की अलग मोर्चेबंदी भाजपा के लिए घातक हो सकती है. वामपंथियों को इस बार यूपीए घटकों का समर्थन नहीं होगा, इसके अलावा राजद और वामपंथी दल कई स्थानों पर अलग-अलग लड़ते हुए ताक़त आजमा रहे हैं.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

भाजपा में असंतोष की संभावनाएं

लोकसभा चुनाव के बाद मध्यप्रदेश में भारतीय जनता पार्टी का वर्तमान नेतृत्व क्या संकट में होगा? इस तथ्य की खोज के लिए भारतीय जनता पार्टी के दो परस्पर विरोधी गुट आपस में भिड़ गए हैं. मध्यप्रदेश की राजनीति में आने वाले पांच वर्षों के लिए शिवराज सिंह चौहान का एकाधिकार निर्विवादित रूप से माना जा रहा है, जिसे चुनौती देने के लिए भाजपा का एक गुट लोकसभा चुनाव को दल की राजनीति का आधार बनाने की फिराक में है. भारतीय जनता पार्टी की मध्यप्रदेश की सरकार आरामदेह बहुमत के साथ राज्य में पांच साल तक सत्ता संचालन के लिए सक्षम है. इस तथ्य से परिचित भाजपा नेताओं के एक गुट ने मौजूदा लोकसभा चुनाव में दल के प्रदर्शन को प्रदेश की भावी रणनीति से जोड़ दिया है. यह सच है कि मध्यप्रदेश की 29 लोकसभा सीटों में टिकट वितरण में शिवराज सिंह चौहान की इच्छा को महत्व दिया गया. उन्हीं प्रत्याशियों का चयन कमोबेश राज्य में किया गया, जो राज्य सरकार की राजनैतिक इच्छाशक्ति के अनुरूप शिवराज सिंह चौहान के निकटतम सहयोगी हो सकते थे. यहां तक कि ज्योतिरादित्य सिंधिया के सामने कभी प्रभावी रहे राज्य के पूर्व मंत्री नरोत्तम मिश्रा को प्रत्याशी के रूप में खड़ा करके भविष्य के राजनैतिक संदेहों का निवारण करने की कोशिश की गई. भाजपा का केंद्रीय नेतृत्व देश में कहीं भी एक ओर गुजरात बनाने से परहेज करेगा, जहां भाजपा की नीतियां और कार्यक्रम किसी एक व्यक्ति की इच्छाओं या आंकाक्षाओं पर आकर केंद्रित हो जाएं.

मध्यप्रदेश में भारतीय जनता पार्टी का वरिष्ठ तबका वर्तमान राजनीति में अपने आपको उपेक्षित महसूस कर रहा है. भोपाल की लोकसभा सीट को भाजपा की केंद्रीय नेता सुषमा स्वराज के लिए सुरक्षित करके कैलाश जोशी को भी दरकिनार करने की कोशिश की गई. इसके अतिरिक्त पूर्व मुख्यमंत्री सुंदरलाल पटवा, पूर्व भाजपा संगठन महामंत्री कप्तान सिंह सोलंकी इन दिनों राजनीति के हाशिए पर हैं. भाजपा के वर्तमान नेतृत्व द्वारा अपनाई गई रणनीति के अनुसार मध्यप्रदेश की 29 लोकसभा सीटों में से कम से कम 25 लोकसभा सीटों को जीतने का लक्ष्य रखा गया है. भाजपा के रणनीतिकार यह मानते हैं कि जीत का आंकड़ा यदि 18 से 20 सीटों के बीच तक ही सीमित रह पाया, तो राज्य की वर्तमान सरकार को आलाकमान तक कई प्रश्नों के उत्तर देने होंगे, जो शिवराज सिंह के राजनैतिक गणित को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त हैं. मध्यप्रदेश में वर्तमान सत्ताधारी गुट के लिए यह संतोष का विषय हो सकता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उनकी गतिविधियों से राज्य में लगभग संतुष्ट है. पिछले दिनों संघ मुख्यालय में हुए परिवर्तनों का व्यापक असर भी मध्यप्रदेश की राजनीति में पड़ना तय है. चुनाव पूर्व किये जा रहे अनुमानों के अनुसार भारतीय जनता पार्टी को वर्तमान लोकसभा चुनावों में छिंदवाड़ा, गुना, खरगौन, झाबुआ, सतना, शहडोल, मंडला, छतरपुर, उज्जैन और देवास सीटों पर भारी कांग्रेसी विरोध का सामना करना पड़ सकता है. यदि ये 10 सीटें भाजपा के हाथ से निकल जाती हैं, तो आडवाणी जी की प्रधानमंत्री पद की यात्रा में मध्यप्रदेश के नेतृत्व को रोडब्रेकर माना जा सकता है. मध्यप्रदेश में वर्तमान लोकसभा चुनावों के दौरान सुषमा स्वराज के रूप में एक और शक्तिकेंद्र की स्थापना कर दी गई है. सुषमा जी दिल्ली होते हुए मध्प्रदेश की राजनीति पर भाजपा के स्थायीकरण को अधिक पुष्ट करने के लिए भेजी गई हैं. सुषमा जी विदिशा संसदीय क्षेत्र से जीतने के बाद राज्य में सत्ता के एक स्वतंत्र केंद्र के बतौर काम करेंगी. इस गतिविधि के कारण कार्यकर्ताओं को अपने असंतोष को हाईकमान तक पहुंचाने के लिए एक और महत्वपूर्ण माध्यम मिल चुका है. भारतीय जनता पार्टी की सरकार से व्यापक जनसंरक्षण न मिल पाने के कारण विश्वहिंदू परिषद, बजरंग दल जैसे संगठनों में सरकार के प्रति उपेक्षा का भाव है. मध्यप्रदेश की राजनीति को क़रीब से जानने वाले राज्य मंत्रिमंडल के सदस्यों कैलाश विजयवर्गीय और अनूप मिश्रा जैसे नेताओं पर भी कड़ी निगाह रख रहे हैं.

उल्लेखनीय है कि इंदौर संसदीय क्षेत्र में कैलाश विजयवर्गीय की घटती हुई ताक़त ने ही उन्हें इस बात के लिए बाध्य किया है कि वे इस संसदीय क्षेत्र में सुमित्रा महाजन से अलग हट कर अपने लिए स्वयं का प्रत्याशी खोजें. विजयवर्गीय की यह कोशिश शिवराज सिंह चौहान को भी रास नहीं आई और अंततः सुमित्रा महाजन ही इस क्षेत्र से दल की प्रत्याशी घोषित की गईं. भारतीय जनता पार्टी में आंतरिक असंतोष लोकसभा चुनाव के परिणामों तक कृत्रिम शांति के रूप में लंबित हैं. शिवराज सिंह चौहान स्वयं भविष्य की स्थितियों का बारीकी से आकलन कर रहे हैं. पिछले दिनों राज्य में भारतीय जनशक्ति पार्टी के प्रह्लाद पटेल को दल में शामिल करने के लिए उनके द्वारा ली गई रुचि इस बात का स्पष्ट संकेत है. उमा भारती स्वयं भारतीय जनता पार्टी के नागपुर सम्मेलन से लेकर आज तक स्वयं की सम्मानजनक वापसी का रास्ता दल में खोज रही हैं. प्रह्लाद पटेल को लोकसभा चुनाव के पहले दल में शामिल करके एक ओर उमा भारती के प्रवेश का रास्ता बंद किया, वहीं दूसरी ओर प्रदेश के अपने राजनैतिक प्रतिद्वंद्वियों को यह स्पष्ट संकेत दे दिया है कि भविष्य में होने वाली राजनीति के लिए प्रह्लाद उनके विशिष्ट सहयोगी हो सकते हैं. प्रह्लाद पटेल की वापसी अंतिम क्षणों तक संशय से घिरी रही. स्वयं प्रह्लाद यह मान चुके थे कि भाजपा का एक समूह उन्हें दल में वापस लौटने के लिए रोकने में क़ामयाब हो चुका है. मध्यप्रदेश में सत्ता और संगठन के बीच आपसी तकरार का माहौल कुछ महत्वाकांक्षी नेताओं की पहल और वरिष्ठ नेताओं द्वारा इस पहल को मौन स्वीकृति दिए जाने से पैदा हो रहा है. इस असंतोष की सुगबुगाहट से भाजपा हाईकमान कितने परिचित हैं, यह कह पाना संभव नहीं है. यह तय है कि सुषमा स्वराज राज्य की हर गतिविधि की रिपोर्ट अब तटस्थ रूप से भाजपा हाईकमान को देने के लिए तत्पर हैं.

संध्या पांडे

feedback.chauthiduniya@gmail.com

उत्तर प्रदेश में दल-बदल की बहार

कौन किसके साथ, पता लगाना मुश्किल

यहां दल, नीतियों और सिद्धांतों की बात नहीं है. अंतरात्मा का सवाल भी नहीं है. आज की राजनीति में ऐसी बातों का मतलब भी नहीं होता. मगर यूपी के महारथियों ने तो इस बार रिकार्ड ही तोड़ दिया. थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद अपना सर्वस्व बदल लेने वाले चेहरे हर पार्टी के अंदर मौजूद हैं. पार्टी के मुखियाओं ने भी आंखें मूंद ली हैं. सबके सामने एक ही लक्ष्य है. किसी भी हालत में जीत. इसके लिए सब कुछ ताक पर. फिर चाहे वह बाहुबली हो या खुद पार्टी के सर्वेसर्वा को बीते दिनों तक जम कर गरियाने वाले लोग. कोई भी किसी भी पार्टी में आ-जा सकता है. आम जन भी भौंचक्का हैं. उसे अपने नेताजी के यह गिरगिटिया तेवर देख कर समझ ही नहीं आ रहा है कि वह करे, तो क्या करे. मौजूदा लोकसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश में राजनीतिक पार्टियों का आलम यही है. राष्ट्रीय पार्टियों की तो प्रदेश में हालत ऐसी ही पतली थी. उनके पास तो प्रत्याशियों का टोटा ही था. क्षेत्रीय दलों ने भी अपने सारे वादे और क़समें तोड़ दी. मायावती ने उस माफिया को भी अपनी पार्टी का प्रत्याशी बना दिया, जिसने उनकी जान लेने की कोशिश की थी. लोहिया के चेले मुलायम सिंह भी बाबरी मस्जिद विध्वंस के आरोपी कल्याण सिंह से गलबहियां करने में पीछे नहीं रहे. पार्टियों ने बड़ी संख्या में उन चेहरों को बदल दिया, जिन्हें बीते वर्ष ही मौजूदा लोकसभा चुनाव में प्रत्याशी बनाने की घोषणा की गई थी. लोकतांत्रिक परंपराओं का मखौल किसी एक दल ने उड़ाया हो, ऐसा नहीं. ऐसा करने में सभी आगे हैं. मौजूदा दौर में चुनाव लड़ रहे नेताओं को अगर उनके पिछले दौर के भाषण सुना दिए जाएं, तो वह खुद शर्मिंदा हो जाएंगे. पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह के साथ कांग्रेस के खिलाफ ज़बरदस्त अभियान चलाने वाले राजबब्बर पिछले चुनाव में सपा के सहारे संसद पहुंचे थे. सपा से नाराज़गी हुई, तो सपा महासचिव अमर सिंह को अंतरराष्ट्रीय दलाल कहने से नहीं चूके. जब सपा-कांग्रेस गठबंधन की बात चली, तो अमर सिंह के जन्मदिन पर फूलों का गुलदस्ता भिजवाया. बात नहीं बनी, तो इस बार कांग्रेस के फतेहपुर सीकरी से प्रत्याशी बन गए. पूर्व केंद्रीय मंत्री बेनी प्रसाद वर्मा लंबे समय से मुलायम सिंह के सखा रहे है. अमर सिंह से नाराज़गी के चलते मुलायम को खरी-खोटी सुनाई. जब साथ थे, तो जम कर कांग्रेस को कोसते थे. अब कांग्रेस के टिकट पर गोंडा से प्रत्याशी हैं. पूर्वी उत्तरप्रदेश के माफिया डॉन हरिशंकर तिवारी सभी दलों में घूम चुके. सत्ता से नज़दीकी की चाह उन्हें बसपा नेत्री मायावती के करीब ले आई. अब उनके दो पुत्र बसपा प्रत्याशी हैं. माफिया डॉन मुख़्तार अंसारी और उनके भाई अफ़ज़ल अंसारी विधानसभा चुनाव से पहले मायावती के निशाने पर थे. कभी मुलायम को अपना नेता बताने वाले धनंजय सिंह अब बहनजी के दुलारे हैं. वह जौनपुर से बसपा के टिकट पर उम्मीदवार हैं. मुख़्तार वाराणसी से और अफ़ज़ल गाजीपुर से चुनाव लड़ रहे हैं. माफिया अतीक अहमद ने भी पहले मायावती का दामन थामने की कोशिश की. मगर वह अरुण शंकर शुक्ल उर्फ अन्ना की तरह भाग्यशाली नहीं रहे. अन्ना 1995 के लखनऊ गेस्ट हाउस कांड में मायावती पर जानलेवा हमले के आरोपी रहे हैं. मगर अब उन्नाव से बसपा के लोकसभा प्रत्याशी हैं.

लखनऊ में लंबे समय से कांग्रेस नेता अखिलेश दास का रथ चर्चा में रहा है. सोनिया गांधी की जय-जयकार से हर गली भरी रहती थी. अखिलेश दास के बैनर अभी भी लगते हैं. मगर फोटो बदल गई. सोनिया गांधी की जगह मायावती ने ले ली है. अब वह लखनऊ से बसपा के प्रत्याशी हैं. सपा लंबे समय तक मुस्लिमों को आकर्षित करने में लगी रही है. बंदायूं से सलीम शेरवानी चार बार से सपा सांसद रहे थे. जब सपा मुखिया मुलायम सिंह ने अपने भतीजे धर्मेंद्र यादव को बंदायूं से चुनाव लड़ाने का फ़ैसला किया, तो सलीम ने कांग्रेस का दामन थाम लिया. अब वे बंदायूं से कांग्रेस प्रत्याशी हैं. पूर्व गृह राज्यमंत्री रामलाल राही ने भी सपा छोड़ कांग्रेस में जाना बेहतर समझा. कांग्रेस ने उन्हें सीतापुर से प्रत्याशी घोषित कर दिया. सपा के गौरीशंकर अब इटावा से बसपा प्रत्याशी हैं. कानपुर से कांग्रेस की सुखदा मिश्रा भाजपा की उम्मीदवार बन गई. भाजपा के अजय राय अब वाराणसी में सपा प्रत्याशी हैं. बसपा से कमलेश पाठक ने नाता तोड़ सपा का दामन थाम लिया, तो सपा छोड़ कर बालेश्वर यादव कांग्रेस पहुंच गए. पूर्व मंत्री सोमपाल शास्त्री बागपत से ही अजीत सिंह के ख़िलाफ़ कांग्रेस उम्मीदवार हैं. सपा के सांसद रहे शफीकुर्रहमान सपा से बगावत कर संबल लोकसभा भेत्र में बसपा के प्रत्याशी बन गए. गोरखपुर के विधायक रहे ओमप्रकाश पासवान के बेटे सपा नेता कमलेश पासवान बांसगांव से अब भाजपा प्रत्याशी हैं. मोहनलालगंज से कांग्रेस नेता रंजन चौधरी अब भाजपा प्रत्याशी हैं. फेरबदल के क्रम में सबसे आगे बसपा रही है. दूसरे दलों से बगावत करके आए 34 लोगों को बसपा ने प्रत्याशी बनाया है. एक वर्ष पूर्व ही मायावती ने सभी लोकसभा क्षेत्रों में प्रभारी के नाम पर अपने प्रत्याशी बना दिए थे. वे सभी चुनाव लड़ने की तैयरियों में जुटे थे. पर ऐन मौके पर जिताऊ प्रत्याशियों के चक्कर में उनमें से अस्सी फीसदी बदल दिए गए. जाहिर है सभी के उद्देश्य और सिद्धांत कहने के और, करने के कुछ और ही हैं.

हरीश मिश्र

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बिहार में विकास और जातीय समीकरण के बीच चुनावी युद्ध

बिहार में विकास और सुशासन चलेगा या पिछला जातीय समीकरण? लगता है कि यह चुनाव इसका फ़ैसला हमेशा के लिए कर देगा. याद रहे कि एनडीए ने विकास और हाल के महीनों में बेहतर हुई कानून-व्यवस्था को अपना चुनावी मुद्दा बनाया है। दूसरी ओर, लालू प्रसाद-रामविलास पासवान अपने पुराने मज़बूत जातीय समीकरण को एक बार फिर भुनाने की कोशिश में लगे हुए हैं. उन्हें बिहार में भी मुलायम सिंह यादव का पूरा समर्थन मिला हुआ है. सपा को गत बिहार विधानसभा चुनाव में 2.52 प्रतिशत मत मिले थे. राजग का मुख्य नारा है, 'न्याय के साथ विकास', तो लालू-पासवान का महत्वपूर्ण नारा है, 'सांप्रदायिक तत्वों का विनाश.'

बिहार में लालू प्रसाद के राजद और रामविलास पासवान के लोजपा ने जब मिल कर चुनाव लड़ा, तो राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन पराजित हुआ. पर, जब वे अलग-अलग लड़े, तो राजग विजयी हुआ. एक बार फिर रामविलास पासवान और लालू प्रसाद मिल कर चुनाव मैदान में उतरे हैं, तो राजद और लोजपा के कार्यकर्ता उत्साहित हैं. क्या इस बार भी राजद-लोजपा की विजय होगी? यह सवाल स्वाभाविक है. पर, दूसरी ओर राजग नेता यह दावा कर रहे हैं कि गत तीन वर्षों में बिहार में मुद्दे और समाजिक समीकरण बदल चुके हैं. इसलिए अब लालू-पासवान का पुराना जातीय समीकरण काम नहीं करेगा.

कुल मिलाकर स्थिति यह है कि बिहार में लोकसभा चुनाव में यदि राजग की जीत होती है, तो वह विकास और सुशासन की जीत कही जाएगी. यदि राजद-लोजपा की जीत हुई, तब यह कहा जाएगा कि जातीय समीकरण अब भी हावी है और पिछड़े, दलित और अल्पसंख्यक राज्य के सामान्य विकास की अपेक्षा अब भी सवर्ण सामंतों और हिंदुत्व की शक्तियों की पराजय के मुद्दे को अधिक अहमियत दे रहे हैं. राजग मतदाताओं से यह अपील कर रहा है कि वे लोकसभा के इस चुनाव में 'जंगलराज' की शक्तियों को अंतिम तौर पर पराजित कर दें. अन्यथा केंद्र में वे फिर ताक़तवर होकर न सिर्फ नीतीश सरकार को विकास के काम नहीं करने देंगे, बल्कि राज्य मंत्रिमंडल को डिसमिस कराने की जुगत भी भिड़ा देंगे. दूसरी ओर राजद-लोजपा के नेता यह कह रहे हैं कि सुशासन के नाम पर बिहार में सामंतों का शासन चल रहा है. यहां से राजग बड़ी संख्या में जीत जाएगा, तो वह एलके आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाएगा, जो देश की एकता-अखंडता और सांप्रदायिक सौहार्द के लिए ठीक नहीं है.

> **राजनीतिक रूप से जागरूक प्रदेश बिहार में कौन सा नारा चलता है, यह चुनाव नतीजे आ जाने के बाद ही पता चल पाएगा. पर इस बीच दलों के बीच आपस में हुमचा-हुमची और दावे-प्रतिदावे जारी हैं. कांग्रेस की हालत इस बीच अजीबोग़रीब हो चुकी है. इस दल ने लालू-रामविलास से नाता तोड़ कर बड़ा राजनीतिक ख़तरा मोल लिया है. प्रेक्षकों की राय है कि यदि लालू-रामविलास उसके लिए तीन ही सीटें छोड़ रहे थे, तो उसे उसी पर संतुष्ट हो जाना चाहिए था**

राजनीतिक रूप से जागरूक प्रदेश बिहार में कौन सा नारा चलता है, यह चुनाव नतीजे आ जाने के बाद ही पता चल पाएगा. पर इस बीच दलों के बीच आपस में हुमचा-हुमची और दावे-प्रतिदावे जारी हैं. कांग्रेस की हालत इस बीच अजीबोग़रीब हो चुकी है. इस दल ने लालू-रामविलास से नाता तोड़ कर बड़ा राजनीतिक ख़तरा मोल लिया है. प्रेक्षकों की राय है कि यदि लालू-रामविलास उसके लिए तीन ही सीटें छोड़ रहे थे, तो उसे उसी पर संतुष्ट हो जाना चाहिए था. क्योंकि उसकी अपनी ताक़त बिहार में काफी कम हो चुकी है. राजद से निकले लालू यादव के चर्चित साले साधु यादव के बल पर कांग्रेस कोई चमत्कार नहीं कर सकती. गत लोकसभा चुनाव में राजद-लोजपा की मदद से ही कांग्रेस को मधुबनी, सासाराम और औरंगाबाद की सीटें मिली थीं. अब जबकि राजद ने इन तीनों सीटों पर भी अपने उम्मीदवार खड़े कर दिए हैं, कांग्रेसी उम्मीदवारों की आंखों की नींद उड़ गई है. मधुबनी से डॉ. शकील अहमद, सासाराम से मीरा कुमार और औरंगाबाद से निखिल कुमार निवर्तमान सांसद हैं. पता नहीं, बिहार के अन्य चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेसी उम्मीदवारों का क्या हश्र होगा, पर इन तीन जीती हुई सीटों पर ज़रूर अनिश्चितता के बादल मंडरा रहे हैं.

पूरे देश की तरह ही बिहार में भी कभी कांग्रेस के वोट बैंक का आधार था 'औरत, बाभन, तुरुक चमारा, ये सब देखो कांग्रेस आरा'. सत्तर के दशक में जब जगजीवन राम नई कांग्रेस के अध्यक्ष थे, तो इंदिरा कांग्रेस का नाम था कांग्रेस (आर). उन्हीं दिनों साप्ताहिक 'दिनमान' में उपर्युक्त तुकबंदी छपी थी.

समय के साथ कांग्रेस का यह वोटबैंक बिखरता गया. पहले भागलपुर दंगे के बाद तुरुक यानी मुसलमान कांग्रेस से अलग हुए, फिर अटल बिहारी वाजपेयी के उदय के साथ ब्राह्मण अलग हुए. इंदिरा गांधी की हत्या के बाद से ही औरतों का आकर्षण कम होने लगा. बिहार के दलित मतों में कुछ तो माले ने लिया, कुछ रामविलास पासवान ने, तो कुछ लालू प्रसाद ने. मायावती ने भी उत्तरप्रदेश से सटे इलाक़ों के दलित मतों में सेंध लगाई. रही सही कसर लालू के धृतराष्ट्र आलिंगन ने पूरी कर दी. लालू से कांग्रेस के लंबे गठजोड़ के कारण बचे-खुचे सवर्ण वोट भी दूसरे दलों में चले गए. अब किस वोट के सहारे कांग्रेस गदा भांज रही है, इसका पता इस लोकसभा चुनाव के नतीजे से साफ हो जाएगा.

वैसे अन्य अधिकतर दलों और उनके नेताओं की सिद्धांतहीनता और अवसरवादिता को देखते हुए कई लोगों को यह लगने लगा है कि कुल मिला कर अब भी कांग्रेस में ही थोड़ी बहुत लोकलाज बची हुई है. पर हाल में उसने कुछ विवादास्पद लोगों को अपनी पार्टी में शामिल कर अन्य दलों से अपनी विशिष्टता को ही थोड़ा नुकसान पहुंचाया है. वैसे कांग्रेस में हाल के दिनों में बिहार में एक नया उत्साह देखा जा रहा है, वह कार्यकर्ता स्तर पर ही अधिक लगता है. आम जनता के लिए तो कांग्रेस बिहार में पहले ही अप्रासंगिक हो चुकी है. उसे अप्रासंगिक बनाने में कांग्रेस हाईकमान का सबसे बड़ा योगदान है, जिसने केंद्र में अपनी सत्ता पाने के लिए लालू के खूंटे में बिहार कांग्रेस नामक गाय को बांध दिया. इस चुनाव में कांग्रेस एक बार फिर वोटकटवा दल की भूमिका में लगती है. इससे पहले भी उसने सन 2000 के बिहार विधानसभा चुनाव में वोटकटवा बन कर लालू प्रसाद को लाभ पहुंचाया था. सन 1999 के लोकसभा चुनाव तो लालू और कांग्रेस एक साथ मिल कर लड़े, पर जब वे राजग से उसमें हार गए, तो राजद और कांग्रेस ने एक खास 'रणनीति' के तहत अलग-अलग चुनाव लड़ा. नतीजतन राजग को बिहार विधानसभा में पूर्ण बहुमत नहीं मिल सका. क्योंकि कांग्रेस ने सवर्णों के कुछ वोट काट कर राजग को नुक़सान पहुंचा दिया. पर चुनाव के बाद कांग्रेस तुरंत राबड़ी मंत्रिमंडल में शामिल भी हो गई. इससे कांग्रेस की 'रणनीति' प्रकट हो गई. क्या इस बार भी इसी रणनीति के तहत कांग्रेस से अलग होकर चुनाव लड़ रही है? लोगबाग यह सवाल कर रहे हैं.

इस चुनाव में रामविलास पासवान और लालू प्रसाद के गठजोड़ के पक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि बिहार विधानसभा के गत चुनाव में इन दोनों दलों के मिले जुले वोटों का प्रतिशत राजग से अधिक था. हालांकि तब कम्युनिस्टों की ठोस मदद जहां-तहां इन्हें मिली थी, जो इस बार अनुपस्थित रहेगी. पर सपा की मदद नई मदद होगी. कम्युनिस्ट अलग से एक वाम गठबंधन बना कर चुनाव लड़ रहे हैं. दो-तीन सीटों पर वे मज़बूत दिखाई पड़ रहे हैं.

दूसरी ओर राजग की सबसे बड़ी पूंजी यह है कि उसने लालू-राबड़ी के पंद्रह साल के जंगलराज से बिहार को मुक्ति दिला दी. पहले जहां विकास योजनाओं पर मात्र दो-तीन हजार रुपए सालाना खर्च होते थे, वहीं नीतीश राज में दस हजार करोड़ रुपए से अधिक सालाना खर्च हो रहे हैं. राज्यभर में इन दिनों सड़क, बिजली, बांध, अस्पताल और भवन निर्माण के क्षेत्रों में तेजी से विकास कार्य हो रहे हैं. कोसी की विपदा राजग के लिए तकलीफ़ देने वाली बात रही. सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार काफी बढ़ा है, जबकि नीतीश कुमार पर कोई आरोप नहीं है.

कुल मिला कर जनता खुश है, इसीलिए राजग के नाराज़ विधायक भी नीतीश सरकार को गत माह नहीं गिरा सके. जबकि मंत्रिमंडल से 17 मंत्रियों की छुट्टी और सबके विभागों में परिवर्तन के बाद अनेक राजग विधायक विद्रोह की मुद्रा में थे।

गत तीन साल में बिहार बिहार में लोकसभा के तीन और विधानसभा के तीन उपचुनाव हुए. सबमें राजग उम्मीदवारों की जीत हुई. बिहार की सरकार में भले भाजपा एक महत्वपूर्ण पार्टनर है, पर यहां कोई हिदुत्व एजेंडा नहीं है. इसीलिए मुसलमान मतदाता भले राजग को वोट न दें, पर उनमें किसी अन्य भाजपा सरकार की तरह नीतीश सरकार से तनाव की स्थिति में नहीं हैं. यह राजग के लिए अच्छी स्थिति है. पर राजद-लोजपा ने मज़बूती से यह मुद्दा उछाला है कि नीतीश कुमार भी तो केंद्र में आडवाणी की ही सरकार बनवाने की कोशिश करेंगे. पर साथ ही लालू प्रसाद ने कहा है कि यदि आडवाणी प्रधानमंत्री बन गए, तो वे राजनीति छोड़ देंगे.

बिहार में मुसलमानों का वोट लालू और पासवान के साथ

बिहार में 16.50% मुसलमान और 10% यादव हैं. बिहार में मुस्लिम बहुल लोकसभा क्षेत्रों में किशनगंज (66%), कटिहार (37%), पूर्णिया (29%), बेतिया (22%), शिवहर (18%), सीवान (17%), गोपालगंज (16%), सीतामढ़ी (16%), सहरसा (13%), वैशाली (13%), पटना (11%), बांका (11%), समस्तीपुर और औरंगाबाद (11%) प्रमुख हैं.पिछले चुनाव में मतदाताओं ने राजद की राह इसलिए नहीं पकड़ी, क्योंकि उन्हें यह शिद्दत से अहसास हो गया था कि राष्ट्रीय जनता दल राजनीति के अपराधीकरण के लिए सबसे अधिक ज़िम्मेदार है. उसी चुनाव में रामविलास पासवान का जदयू से नाता तोड़कर लोकजशक्ति पार्टी की नींव रखना और राजद से हाथ मिलाना भी नया घटनाक्रम रहा. इससे जदयू को भारी नुकसान उठाना पड़ा. जदयू-भाजपा गठजोड़ के चलते राज्य के अल्पसंख्यक मतदाता जदयू से खफा हो गए. इसके बावजूद सन 2005 के बिहार विधानसभा चुनाव में राजद-कांग्रेस गठजोड़ की सरकार नहीं बन सकी.

राजनीतिक शतरंज की बिसात पर बिहार में एनडीए और यूपीए के महत्वपूर्ण घटक दलों - एलजेपी और आरजेडी के बीच टक्कर होनी तय है. भले ही कांग्रेस, राजद और लोजपा तीनों ही यूपीए के घटक दल हैं, लेकिन चुनाव में कभी भी राजद और लोजपा को कांग्रेस के वोट-बैंक का फायदा नहीं मिल पाता है.

कांग्रेस खुद इनका फायदा उठाती रही है. बिहार में लालू प्रसाद यादव एवं मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जोर-शोर से मुस्लिम वोट इकट्ठे करने के प्रयासों में जुटे हुए हैं. दोनों ही पार्टियां इस बात से वाकिफ हैं कि क्षेत्र के मुस्लिम वोट चुनावी परिणामों में ज़मीन-आसमान का अंतर ला सकते हैं. लेकिन राजद और लोजपा के गठबंधन के कारण राज्य में जो सियासी हालात बने हैं, उसमें पलड़ा लालू और पासवान का ही भारी लग रहा है.

चुनाव परिणाम / बिहार / 2004 लोकसभा

दल	प्राप्त सीटों की संख्या	प्राप्त प्रतिशत
राजद	22	30.7
लोजपा	4	8.2
कांग्रेस	3	4.5
भाजपा	5	14.6
जदयू	6	22.3
2005 नवंबर, बिहार विधानसभा		
राजद	54	23.45
लोजपा	10	11.10
कांग्रेस	9	6.09
भाजपा	55	15.65
जदयू	88	20.46
1999 लोकसभा		
राजद	6	34.01
कांग्रेस	2	4.78
सीपीएम	1	1.25
भाजपा	12	16.90
जदयू	18	25.18
निर्दलीय	1	

सुरेंद्र किशोर

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अप्रत्याशित चुनाव के लिए तैयार रहिए

लोकसभा चुनाव 2009/बिहार-प्रथम चरण/13 सीटें

सभी फोटो- प्रभात पाण्डेय

पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव के पहले चरण में बिहार की कुल 40 लोकसभा सीटों में से 13 सीटों – गोपालगंज (सुरक्षित), सीवान, महाराजगंज, सारण, आरा, बक्सर, सासाराम, काराकाठ, जहानाबाद, औरंगाबाद, गया, नवादा, जमुई (सुरक्षित) पर 16 अप्रैल 2009 को चुनाव होना है. नए परिसीमन के बाद लगभग सभी लोकसभा सीटों का रूप–रंग व प्रकृति बदल गई है. इनमें काराकाठ, सारण व जमुई नए नामों से लोकसभा क्षेत्र बनाए गए हैं. गोपालगंज, जो पहले सामान्य था, अब सुरिक्षत और नवादा जो पहले सुरिक्षत था, अब सामान्य सीट हो गई है. नई बनाई गई लोकसभा सीट अनुसूचित जाति के लिए सुरिक्षत है. इस प्रकार बिहार में होने वाले पहले चरण के चुनाव में कुल 13 में से 3 सीटें सुरक्षित और 10 सीटें सामान्य हैं.

चुनाव के ठीक पहले कई पार्टी के नेताओं द्वारा अचानक पाला बदलने, आम मतदाताओं के खामोश रहने और इस बार के चुनाव में राष्ट्रीय स्तर पर कोई बड़ा मुद्दा नहीं रहने के कारण जहां एक ओर चुनावी मुकाबलों में प्रमुख दलों को अपने ही दल के भितरघातियों का मुकाबला करना पड़ेगा, इसीलिए अभी चुनावी संभावनाओं की तस्वीर धुंधली लग रही है. वाम दलों द्वारा तीसरे मोर्चे के गठन के बाद लालू–रामविलास गठजोड़ और अब मुलायम सिंह यादव के साथ मिल कर चौथे मोर्चे का गठन, बहुजन समाज पार्टी एवं कांग्रेस द्वारा लगभग सभी सीटों पर उम्मीदवार खड़ा करने, टिकट बंटवारे के नाम पर हुई खींचतान सबों के चुनावी खेल बिगाड़ सकती है. इन्हीं सब उधेड़बुन के बीच अब तक की जो तस्वीर सामने उभरकर आ रही है, डालते हैं उन पर एक नजर –

- गोपालगंज लोकसभा सीट जो पूर्व में सामान्य थी, नए परिसीमन के बाद उसे सुरिक्षत कर दिया गया. यहीं से जीजा–साले के मेल–फेल हो गए. 2004 के चुनाव में राजद से अनिरुद्ध प्रसाद उर्फ साधु यादव ने जद यू के प्रभुदयाल सिंह को 1,92,919 मतों से पराजित किया था, लेकिन इस बार इस क्षेत्र के सुरक्षित होने से साधु यादव का पत्ता साफ हो गया. गोपालगंज ज़िले से बिहार के तीन भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों का जुड़ाव रहा है. अब्दुल गफूर, लालू प्रसाद एवं राबड़ी देवी. यहां से पूर्व में काली प्रसाद पांडे, नगीना राय, अब्दुल गफूर, रघुनाथ झा जैसे दिग्गज उम्मीदवार लोकसभा का चुनाव जीत चुके हैं. इस बार 'लालू प्रसाद के शंकराचार्य' राजद के भगोड़े विधायक रमई राम कांग्रेस, पूर्व राज्यसभा व वर्तमान में भोरे (सुरक्षित) क्षेत्र के राजद विधायक अनिल कुमार (राजद), पूर्णमासी राम (जदयू), सत्यदेव राम (सीपीआईएमएल) और जनक चमार (बसपा) के बीच चौतरफा मुकाबले की प्रबल संभावना है. पार्टी में आपसी कलह से बड़े नेताओं में घोर मायूसी है. ऐसे में गोपालगंज सीट से माले के सत्यदेव राम बाजी मार लें, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा. इस बार यहां के कुल 13, 23, 106 मतदाता उम्मीदवारों के भाग्य का फैसला करेंगे.
- सीवान लोकसभा क्षेत्र, जो कभी डॉ राजेंद्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, मौलाना मजहरूल हक़, महामाया प्रसाद सिंह का कार्यक्षेत्र रहा है. अब बाहूबली राजद के शहाबुद्दीन का गढ़ माना जाता है. 2004 के चुनाव में राजद के शहाबुद्दीन ने जदयू के ओमप्रकाश यादव को 1, 03, 578 मतों के भारी अंतर से हराया था. पूर्व में छात्र नेता चंद्रशेखर की हत्या के बाद यहां की राजनीति में उबाल आया. इस बार जेल में बंद शहाबुद्दीन की पहली पत्नी हीना सहाब राजद मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के मौसेरे भाई व बिहार सरकार के ग्रामीण कार्य मंत्री वृषन पटेल जदयू, अमरनाथ यादव सीपीआईएमएल और पारसनाथ पाठक बसपा के मुख्य उम्मीदवार हैं. वृषन पटेल और हीना सहाब की प्रतिद्वंद्विता में माले के अमरनाथ यादव चुनाव जीत सकते हैं. चंद्रशेखर की हत्या के वर्षों बाद भी उनके प्रति लोगों की हमदर्दी अमरनाथ यादव के साथ होगी. यहां राजद के एम–वाई समीकरण दम तोड़ चुका है. यहां के कुल 11, 85, 494 मतदाता उम्मीदवारों के भाग्य का फैसला करेंगे.
- महाराजगंज लोकसभा क्षेत्र से 2004 में जदयू के प्रभुनाथ सिंह ने राजद के जीतेंद्र स्वामी को 46,465 मतों के अंतर से मात दी थी. इस बार वर्तमान सांसद प्रभुनाथ सिंह जदयू, तारकेश्वर सिंह कांग्रेस और उमाशंकर सिंह राजद के बीच मुख्य मुकाबला है. तीनों राजपूत जाति के उम्मीदवार हैं. त्रिकोणीय संघर्ष में पहले प्रभुनाथ सिंह का पलड़ा भारी दिखता था, लेकिन अब कांग्रेस के तारकेश्वर सिंह आगे दिखते हैं. क्षेत्र का भूमिहार वोट प्रभुनाथ सिंह को मात देने के लिए तारकेश्वर सिंह की ओर पड़ने के पूरे आसार हैं. यहां के कुल 12, 36, 894 मतदाता उम्मीदवारों के भाग्य का फैसला करेंगे.
- सारण. भोजपुरी के शेक्सपीयर भिखारी ठाकुर का बेबस कुतुबपुर गांव यहीं है, जहां से रेलमंत्री लालू प्रसाद यादव राजद, राजीव प्रताप रूढ़ी भाजपा के प्रमुख उम्मीदवार हैं. 2004 में लालू प्रसाद यादव ने भाजपा के राजीव प्रताप रूढ़ी को 60,429 मतों से परिाजत किया था. उस वक्त इसका नाम छपरा लोकसभा क्षेत्र था. इस बार लालू यादव के मन में हारने का भय पहले से व्याप्त है और वे पाटलिपुत्र लाकसभा से भी उम्मीदवार हैं. ऐसे में राजीव प्रताप रूढ़ी का पलड़ा भारी दिखता है. यहां मतदाताओं की कुल संख्या 12, 06, 729 है. यहां चुनाव परिणाम रोचक होगा, रोमांचकारी होगा और बिहार एवं केंद्र की सरकार का भविष्य तय करेगा.
- आरा लोकसभा क्षेत्र बाबू जगजीवन राम व डाक्टर राम सुभग सिंह, बलिराम भगत, राम लखन सिंह यादव, कांति सिंह, रामेश्वर प्रसाद का कार्यक्षेत्र रहा है. बिहार में चुनावी हिंसा की शुरुआत यहीं से हुई. 2004 में राजद की कांति सिंह ने सीपीआईएमएल के रामनरेश राम को 1,49,743 मतों के भारी अंतर से शिकस्त दी थी. सरदार हरिहर सिंह, बलिराम भगत, राम प्रसाद कुशवाहा यहां का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं. इस बार मीना सिंह जदयू, रीता सिंह बसपा, बाहूबली रामा किशोर सिंह लोजपा एवं काराकाठ विधायक अरुण सिंह माले के प्रमुख उम्मीदवार हैं. बाहूबिलयों एवं धनाढ्यों की लड़ाई में माले के अरुण सिंह दूसरे उम्मीदवारों से भारी दिखते हैं. कुल 15, 25, 403 मतदाता इनके भाग्य का फ़ैसला करेंगे.

> **चुनाव के ठीक पहले कई पार्टी के नेताओं द्वारा अचानक पाला बदलने, आम मतदाताओं के खामोश रहने और इस बार के चुनाव में राष्ट्रीय स्तर पर कोई बड़ा मुद्दा नहीं रहने के कारण जहां एक ओर चुनावी मुकाबलों में प्रमुख दलों को अपने ही दल के भितरघातियों का मुकाबला करना पड़ेगा, इसीलिए अभी चुनावी संभावनाओं की तस्वीर धुंधली लग रही है.**

- बक्सर लोकसभा सीट उत्तर प्रदेश का पड़ोसी है. 2004 में भाजपा के लालमुनि चौबे ने ललन सिंह को 54, 866 मतों से मात दी थी. रामानंद तिवारी, केके तिवारी कांग्रेस, बक्सर विधायक श्यामलाल कुशवाहा बसपा के साथ ललन पहलवान भी चुनावी अखाड़े में हैं. दबंग जगदानंद सिंह और फक्कड़ स्वभाव के लालमुनि चौबे भभुआ निवासी हैं. कारण कि जगतानंद सिंह के वोटों की कटाई ललन पहलवान और चौबे की तिवारी करेंगे. उत्तर प्रदेश की सीमा से सटे होने के कारण बक्सर में बहन जी का हाथी दूसरों पर भारी पड़ सकता है. यहां मतदाताओं की संख्या 1297469 है.
- सुरक्षित सासाराम, राजनीति के बाबू जी कहे जा–नेवाले जगजीवन राम का लोकसभा क्षेत्र, जहां से 1962 से 1984 तक वे सांसद रहे. 2004 में जगजीवन राम की बेटी कांग्रेस की मीरा कुमार ने भाजपा के मुनिलाल को 2,58,262 के बड़े अंतर से मात दी थी. इस बार मीरा कुमार कांग्रेस, ललन पासवान राजद, मुनिलाल भाजपा के अलावा गांधी आज़ाद बसपा के मुख्य उम्मीदवार हैं. बसपा के गांधी आज़ाद इस बार सासाराम से कोई नया गुल खिला सकते हैं. मीरा कुमार मुनिलाल और गांधी आज़ाद के बीच त्रिकोणीय संघर्ष में गांधी संगठन व पैसों के बल पर दोनों पर भारी पड़ेंगे. कुल 13, 49, 699 मतदाता इनके भाग्य का फैसला करेंगे.
- काराकाठ को इस बार नए परिसीमन में नया लोकसभा क्षेत्र बनाया गया है. 2004 में विक्रमगंज लोकसभा क्षेत्र से जदयू के अजीत कुमार सिंह ने राजद के राम प्रसाद सिंह को 58,801 मतों से हराया था. अजीत कुमार सिंह की दुर्घटना में मृत्यु के बाद उनकी पत्नी मीना सिंह ने चुनाव जीता. इस बार कांति सिंह राजद, अवधेश सिंह कांग्रेस, महाबली सिंह जदयू, रमाधार सिंह बसपा, राजाराम सीपीआईएमएल के प्रमुख उम्मीदवार हैं. नया लोकसभा क्षेत्र होने से यहां सभी ताल ठोंक रहे हैं. लेकिन अंततः मुक़ाबला माले के राजाराम की कांति सिंह के बीच होने की प्रबल संभावना है. सेंधमारी के चलते दोनों को परेशानी हो सकती है. तीसरे मोर्चे की एकता माले के राजाराम सिंह को जीत दिला सकता है. यहां मतदाताओं की कुल संख्या 13, 60, 891 है.
- जहानाबाद संसदीय क्षेत्र जातीय हिंसा की आग में जलता रहा है. 2004 में राजद के गणेश प्रसाद यादव ने जदयू के अरुण कुमार सिंह को 46,438 मतों से हराया था. इस बार यहां से सुरेश यादव राजद, जगदीश शर्मा जदयू, अरुण कुमार सिंह कांग्रेस व महानंद सीपीआईएमएल के मुख्य उम्मीदवार हैं. मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी का राजद को सर्मथन, वहीं दूसरी ओर अरुण कुमार सिंह का जदयू होते लोजपा छोड़ कर कांग्रेसी प्रत्याशी बन जाने से जहां जदयू के जगदीश शर्मा कमज़ोर पड़े हैं, वहीं सुरेंद्र प्रसाद यादव की जीत का रास्ता साफ दिखता है. माले प्रत्याशी महानंद अपनी ताक़त का एहसास करा सकते हैं. यहां मतदाताओं की संख्या 12,40,491 है.
- औरंगाबाद लोकसभा क्षेत्र कभी चित्तौड़गढ़ के नाम से जाना जाता था. नए परिसीमन के बाद चित्तौड़गढ़ पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है. यह कांग्रेस के अनुग्रह नारायण सिंह व सत्येंद्र नारायण सिंह का पुराना क्षेत्र रहा है. 2004 में सत्येंद्र नारायण सिंह के पुत्र निखिल कुमार ने जदयू के सुशील कुमार सिंह को 7460 मतों के मामूली अंतर से हराया था. इस चुनाव में निखिल कुमार कांग्रेस, सुशील कुमार सिंह जदयू, शकील अहमद खां राजद और अर्चना यादव बसपा के मुख्य उम्मीदवार हैं. दो राजपूतों की लड़ाई में राजद के शकील अहमद खां जो गुरुआ विधानसभा के विधायक भी हैं, को फायदा पहुंच सकता है, लेकिन बसपा की अर्चना यादव ने जो यादवों के वोट में सेंध लगा दी, तो मुक़ाबला दिलचस्प हो सकता है. अभी शकील अहमद खां अन्य दूसरों से आगे दिखते हैं. यहां कुल 1332096 मतदाता हैं.
- गया लोकसभा क्षेत्र से 2004 में राजद के राजेश कुमार मांझी ने भाजपा के बलबीर चांद को 1,02,934 के भारी अंतर से हराया था. इस बार रामजी मांझी राजद, हरि मांझी भाजपा, संजीव कुमार टोनी कांग्रेस, निरंजन कुमार माले, कलावती देवी बसपा की उम्मीदवार हैं. मुख्य मुक़ाबला राजद और भाजपा के बीच है. टोनी ने मुकाबले को दिलचस्प बना दिया है, लेकिन हवा भाजपा के पूर्व सांसद और इस बार राजद के उम्मीदवार रामजी मांझी की ओर बहती दिखती है. गया लोकसभा में मतदाताओं की संख्या 12,83,125 है.
- नवादा लोकसभा क्षेत्र पूर्व में आरिक्षत था, लेकिन इस बार सामान्य हो जाने से बाहूबली के साथ धनाढ्य उम्मीदवारों की बाढ़ आ गई है. 2004 में राजद के वीरचंद पासवान ने भाजपा के संजय पासवान को 56006 मतों से परिाजत किया था. इस बार बाहुबली लोजपा सांसद सूरजभान सिंह की पत्नी वीणा सिंह लोजपा, भोला सिंह भाजपा, राजो सिंह की पुत्रवधू सुनीला सिंह कांग्रेस, गणेश शंकर विघार्थी सीपीएम, मसीहउद्दीन बसपा के अलावा निर्दलीय प्रत्याशी की हैसियत से अखिलेश सिंह, राजवल्लभ यादव, कौशल यादव या उनकी पत्नी पूर्णिमा यादव उम्मीदवार हो रहे हैं. बाहूबल और धनबल के बीच यहां कांटे की टक्कर वर्षों बाद देखने को मिल सकती है. भूमिहार यादव जाति के उम्मीदवारों की संख्या अधिक होने से एवं भितरघात से त्रस्त होने के कारण क्षेत्रीय उम्मीदवार बसपा के मसीहउद्दीन इस बार चुनाव में बाज़ी मार लें, तो यह आश्चर्य नहीं होगा. नवादा में कुल मतदाताओं की संख्या 13,67,742 है.
- जमुई नए परिसीमन के बाद बना नया लोकसभा क्षेत्र है. यह बिहार के पहले मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह एवं श्यामा प्रसाद सिंह के प्रभाव का क्षेत्र रहा है. यहां से इस बार श्याम रजक राजद, भूदेव चौधरी जदयू, अशोक चौधरी कांग्रेस एवं अर्जुन रविदास बसपा के उम्मीदवार हैं. दो चौधरी की लड़ाई एवं नामांकन के समय अर्जुन रविदास की गिरफ्तारी के बाद लालू यादव के सबसे प्रिय नेता श्याम रजक की गोटी लाल दिखती है. यहां मतदाताओं की कुल संख्या 13, 83, 290 है.

प्रभात कुमार शांडिल्य

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चुनाव के बाद का चुनाव

पंद्रहवीं लोकसभा का असली चुनाव तो नतीजों के बाद ही होगा. ऐसा इसलिए कि नतीजे शायद सरकार का चरित्र तय न कर सकें. साथ ही नतीजों से कुछ ऐसी तस्वीर उभरने की भी उम्मीद है, जो राजनेताओं को कई तरह का गुणा–भाग करने पर मजबूर कर देंगे.एक संभावित तीसरे मोर्चे की उपस्थिति, जिसके केंद्र में वाम मोर्चा है, ने क्षेत्रीय दलों के लिए नए दरवाज़े खोल दिए हैं, जिन्होंने नए साझीदारों की तलाश में पहले ही बाहर की ओर देखना शुरू कर दिया है. उड़ीसा में बीजू जनता दल का भाजपा से संबंध तोड़ने का फ़ैसला हो, या बिहार में राजद–लोजपा का गठबंधन कर कांग्रेस को बाहर रखने का निर्णय हो, चिर प्रतिद्वंद्वी मुलायम सिंह यादव के साथ मिल कर लालू का बिहार और उत्तर प्रदेश में सीटों पर समझ बनानी हो, राकांपा के अध्यक्ष शरद पवार का तीसरे मोर्चे को खुला समर्थन हो या नीतीश कुमार की दूसरे क्षेत्रीय दलों से गुपचुप बातचीत हो, ये सारी घटनाएं जैसी दिख रही हैं, इनके निहितार्थ उससे कहीं गहरे हैं. नतीजे निश्चित तौर पर उत्प्रेरक का काम करेंगे. जादुई आंकड़ा तो 150 लोकसभा सीटों का है. यह वह न्यूनतम संख्या है, जो भाजपा, कांग्रेस या तीसरे मोर्चे को लानी होगी, ताकि वह दूसरे दलों को अपनी ओर आकर्षित कर सरकार बना सकें. कई सवाल हालांकि जवाब मांग रहे हैं. क्या वाम दल तीसरे मोर्चे की सरकार में शामिल होंगे. फ़ैसला तो जाहिर तौर पर नतीजों के बाद ही लिया जाएगा. कौन प्रधानमंत्री होगा. भाजपा ने आडवाणी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया है, जबकि कांग्रेस ने अपनी परंपरा से हटते हुए मनमोहन के नाम की घोषणा की है. हालांकि सभी यह स्वीकार करते हैं कि नतीजे कुछ इस तरह के आ सकते हैं कि किसी क्षेत्रीय नेता का नेतृत्व ही ज़रूरी समर्थन जुटाने के लिए करना पड़ सकता है. तीसरे मोर्चे ने अब तक किसी नाम की घोषणा नहीं की है. क्षेत्रीय दलों के नेताओं की उम्मीदें बढ़ गई हैं, हरेक व्यक्ति नतीजे आने के बाद के चुनाव में समर्थन जुटाने के बारे में बात कर रहा है. हमने संभावित प्रधानमंत्रियों की एक सूची तैयार की है. यह सूची राजनेताओं से बातचीत के आधार पर तैयार की गई है और उन तत्वों की भी समीक्षा करती है, जिनकी ज़रूरत सत्ता की सीढ़ी चढ़ने के लिए पड़ेगी.

मनमोहन सिंह

(अगर कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए की सरकार वापस आती है, तो मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बनेंगे)

मनमोहन सिंह ही प्रधानमंत्री होंगे, अगर कांग्रेस फिर से गठबंधन सरकार बनाती है. यह घोषणा सोनिया गांधी ने की. मनमोहन ने उनकी प्रशंसा में क़सीदे पढ़े, लेकिन लोकसभा चुनाव लड़ने से इनक़ार कर दिया. यह कहते हुए कि वह अब भी अपनी सर्जरी से उबर रहे हैं. गैर–विवादास्पद और स्वच्छ छवि वाले मनमोहन सिंह अब तक कांग्रेस पार्टी में लोकप्रिय नहीं हुए हैं, लेकिन सोनिया गांधी उनको बेहद पसंद करती हैं. वह सबकी पसंद इस वजह से बनते हैं कि न केवल सोनिया उन पर आंख मूंद कर यक़ीन करती हैं, बल्कि गैर–प्रतियोगी और दखल न डालनेवाला होने की वजह से ही सहयोगी भी उनको पसंद करते हैं.

मनमोहन के अलावा शिवराज पाटिल ही एकमात्र नेता हैं, जिन पर सोनिया पूरी तरह यक़ीन करती हैं. हालांकि पाटिल का गृहमंत्री के तौर पर नाकारापन ही उनके ख़िलाफ़ चला गया. मनमोहन को मध्यवर्ग बेहद पसंद करता है और यही वजह है कि भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी उन पर हमला बोल रहे हैं. सोनिया गांधी ने अब तक की परंपरा से किनारा करते हुए मनमोहन को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया है, तो इसकी वजह यही है कि उनके पास और कोई नहीं है, जिन पर इतना भरोसा किया जा सके.

मायावती

(मायावती के प्रधानमंत्री बनने के मौक़े शानदार हैं. अगर वह 40 से अधिक सीटें लाती हैं, तो वह तीसरे मोर्चे का नेतृत्व कर सकती हैं, एनडीए की नेता बन सकती हैं या यूपीए को भी बेहिचक नेतृत्व दे सकती हैं)

मायावती महत्वाकांक्षी नेता हैं. उनके पास पर्याप्त लोकसभा सीटों वाला राज्य भी है. उन्होंने बाक़ी राज्यों में भी अपने उम्मीदवार खड़े किए हैं, लेकिन उनका मुख्य ध्यान उत्तरप्रदेश पर ही है. जैसा कि उनके मुख्य सहयोगी और सलाहकार सतीश मिश्रा ज़ोर देकर कहते हैं कि बसपा कम से कम 60 सीटें जीतेगी. मायावती के विरोधी भी उनको 40 सीटें दे रहे हैं. यह भी एक बढ़िया संख्या है, जो उनको चुनाव के बाद केंद्रीय भूमिका निभाने का मौक़ा दे सकता है.

राहुल गांधी

(राहुल गांधी उसी हालत में प्रधानमंत्री बनेंगे, जब कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिले. वह किसी अनिश्चित गठबंधन का नेतृत्व नहीं स्वीकारेंगे.)

नेहरू–गांधी खानदान के उत्तराधिकारी राहुल गांधी अपनी मां सोनिया गांधी के अलावा एकमात्र ऐसे उम्मीदवार हैं, जो प्रधानमंत्री की दौड़ में सर्वानुमति पा सकते हैं, बशर्ते कांग्रेस को अकेले दम पर बहुमत आ जाए. राहुल ने दो साल पहले ही एक साक्षात्कार में कहा था कि अगर वह चाहते, तो 25 साल की उम्र में ही प्रधानमंत्री बन जाते, लेकिन उन्होंने फ़ैसला किया कि वह सही समय का इंतज़ार करेंगे. वह अपने वरिख़ें पर नहीं चिल्लाएंगे. बहुत ही जोशीले आग़ाज़ के बाद अब कांग्रेस को समझ में आ रहा है कि इन चुनावों में तो बहुमत अकेले दम पर आना संभव नहीं है. इसी वजह से कांग्रेस ने साफ कर दिया कि डॉ मनमोहन सिंह ही प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार होंगे. चुनाव की हवा गर्म होने के साथ ही 10, जनपथ ने राहुल गांधी को प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी प्रोजेक्ट करने के बारे में संभल कर ही हरी बत्ती जलाने का निर्देश दिया. यही वजह है कि इसी साल जनवरी में आम तौर पर सावधान रहने वाले प्रणव दा भी संवाददाताओं से कह बैठे कि वह दिन दूर नहीं, जब राहुल गांधी प्रधानमंत्री होंगे. साथ ही यह भी जोड़ दिया कि राजीव गांधी 40 साल की उम्र में पीएम बने थे, तो राहुल भी अपने पिता के ही नक़्शे–क़दम पर चलेंगे. कांग्रेस के बड़े नेताओं ने भी तुरंत सुर में सुर मिला दिया. यह उस प्रतिक्रिया के ठीक उलट है, जब कांग्रेस के एक प्रवक्ता ने मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह के बयान के ठीक बाद कांग्रेस के एक प्रवक्ता ने कहा कि हम यह साफ़ कर देना चाहते हैं कि प्रधानमंत्री पद के लिए कोई वैकेंसी नहीं है. कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और राहुल हमेशा ही चापलूसों से दूर रहे हैं. अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के वॉर–रूम के रणनीतिकारों ने यह तय किया कि राहुल गांधी को प्रधानमंत्री नहीं होना चाहिए. तब भी नहीं, अगर कांग्रेस सबसे अधिक सीटें जीत कर उभरती है. इसी निश्चितता ने सोनिया गांधी को राहुल की जगह मनमोहन का नाम प्रस्तावित करने को बाध्य किया.

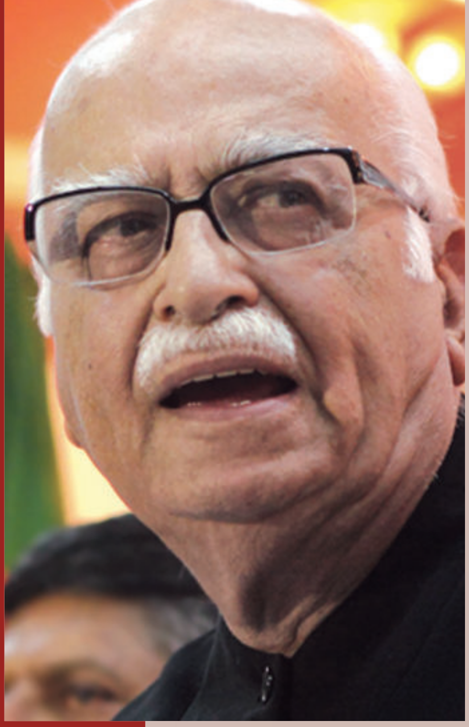

लालकृष्ण आडवाणी

(आडवाणी प्रधानमंत्री होंगे, अगर भाजपा को अकेले दम पर जीत मिले, या उनके गठबंधन को सत्ता में आने लायक सीटें मिल जाएं. यह उनका आख़िरी मौक़ा है)

पार्टी में चल रही तमाम उठापटक के बावजूद लालकृष्ण आडवाणी भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार हैं. पार्टी में उनके समर्थक इस बात को स्वीकारते हैं कि हालांकि वह इस एक मौक़े से वंचित नहीं किए जा सके, लेकिन यह मौका भी उनको तभी मिला, जब भाजपा ने गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को अगले चुनाव में सबसे बड़े पद के लिए लड़ाने का फ़ैसला कर लिया.

आडवाणी तभी प्रधानमंत्री होंगे, जब भाजपा अकेले दम पर बहुमत पा जाए. या फिर वह गठबंधन का नेतृत्व करने की स्थिति में हो. यह फिलहाल तो निश्चित नहीं दिखता. खासकर तब, जब पार्टी को उत्तर प्रदेश और बिहार में कुछ भी फ़ायदा होता नहीं दिख रहा है, और इन्हीं दोनों राज्यों से अकेले ही लोकसभा की 120 सीटें आती हैं. आपसी लड़ाई जारी है, लेकिन आडवाणी और भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह आश्वस्त हैं कि अंतिम परिणाम उन्हीं के हक़ में आएगा. भाजपा प्रवक्ता प्रकाश जावडेकर आशावादी स्वर में कहते हैं कि हरेक चुनावपूर्व सर्वेक्षण ने आडवाणी को एक ताक़तवर, मज़बूत और दृढ़ नेता के रूप में दिखाया है.

हालांकि जनता दल (एस) के महासचिव दानिश अली कहते हैं कि आडवाणी 'पीएम इन वेटिंग' ही रहेंगे. उनकी पार्टी की अंदरूनी उठापटक ही उनके ख़िलाफ़ जाएगी. मनमोहन सिंह भी आडवाणी पर हल्ला बोलते हुए कहते हैं कि देश को फ़ैसला करना है कि आडवाणी कमज़ोर हैं या मज़बूत. क्या वह प्रधानमंत्री होने के लायक हैं?

और भी हैं दौड़ में

प्रधानमंत्री पद की दौड़ में और भी उम्मीदवार हैं. बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के भी एनडीए गठबंधन के प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार बनने की अच्छी संभावना है. साथ ही वह तीसरे मोर्चे के भी उम्मीदवार हो सकते हैं. खासकर अगर मायावती ने बहुत बढ़िया प्रदर्शन नहीं किया, तो.

जयललिता भी किसी भी वैसे गठबंधन का हिस्सा बन सकती हैं, जो उनको प्रधानमंत्री बना दे. हालांकि अगर चुनाव के बाद ऐसी कोई संभावना नहीं बनी, तो वह तीसरे मोर्चे में ही रहना पसंद करेंगी, न कि कांग्रेस या भाजपानीत सरकार का हिस्सा बनेंगी.

चंद्रबाबू नायडू तीसरे मोर्चे में हैं और वह भी प्रधानमंत्री पद के बदले अहम मंत्री पद लेकर संतुष्ट हो सकते हैं, अगर संख्याओं का ही खेल हो, तो. हालांकि वह बेहद ख़ामोशी से प्रधानमंत्री पद के सर्वसम्मत उम्मीदवार बनने के लिए काम कर रहे हैं.

शरद पवार अचानक से ही प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार बन सकते हैं, जिनका समर्थन कई क्षेत्रीय पार्टियां कर सकती हैं.

सीमा मुस्तफा और बुला देवी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

[COVERT]

center page:Layout 1 4/2/2009 1:46 AM Page 2

ताक़तवर के जीने का संघर्ष

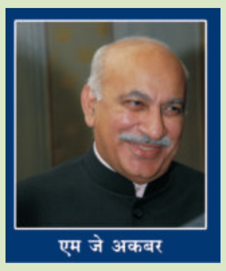

एम जे अकबर

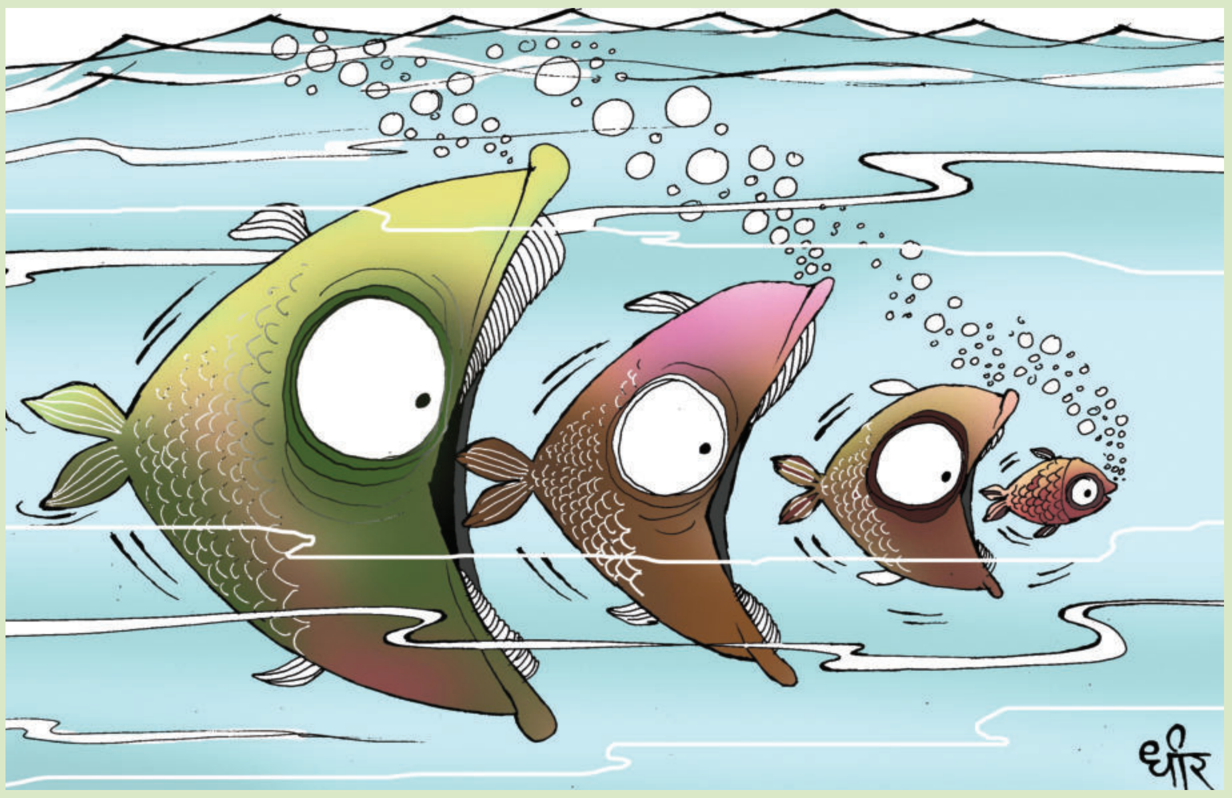

इस दौर में, जब बाकी देशों ने डार्विन को भुला दिया है, हमारे देश के राजनेता उनकी जन्मतिथि के 200वें साल में उन्हें अपनी तरह से सम्मान दे रहे हैं. होने वाले आम चुनाव अब सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट के मुहावरे में बदल चुके हैं. जैसा कि डार्विन ने हमें बताया था कि न तो भावनाएं, न ही रिश्तेदारी और न ही नैतिकता जैसी कोई बात बचती है, क्योंकि ताक़तवर प्रजातियां कमज़ोरों को ख़त्म करती रहती हैं. राजनीतिक प्रकृति के नियमों की प्रक्रिया को देखना सचमुच खासा मज़ेदार है.

वफ़ादारी तो दरअसल किसी मंदबुद्धि के हाथ में भीख के कटोरे सरीखी बात है. जो इसकी बात करते हैं, वह इसके योग्य नहीं होते. किसी भी संबंध को नापने की एकमात्र कसौटी ताक़त है. जहां कहीं भी विवाद का निपटारा किया जा रहा है, उसे कल के वायदों को याद किए बिना ही निपटाया जा रहा है. नए गठजोड़ पर एक तात्कालिक लाभ के आकलन को छोड़ कर किसी दूसरी बात का प्रभाव नहीं पड़ता. हरेक द्वंद्व एक ठंडी लड़ाई होती है, जिसमें पहले के द्वेष या भविष्य के राग की संभावना का कोई फर्क नहीं पड़ता. हरेक तरह की संभावना को टटोला जाता है, साथ ही अलगाव के बाद भी एक होने की संभावना को भी खारिज़ नहीं किया जाता.

समझौते होते हैं और जैसे ही अधिक दाम मिलने की संभावना दिखती है, तोड़ दिए जाते हैं. झारखंड, तमिलनाडु, बिहार, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में राजनीति से विश्वास या भरोसे को पूरी तरह खारिज़ कर दिया गया है. क्या हमें केवल यह कहना चाहिए कि आख़िरी चाय पार्टी जयललिता के पॉयस गार्डेन नाम के बंगले पर नहीं हुई है और इसी वजह से चाय की केतली में नामांकन के वक्त तक उबाल आता रहेगा.

डार्विन के प्रति सच्चे सम्मान के बतौर हमें चुनाव आयोग (इलेक्शन कमीशन) का नाम बदल कर चयन आयोग (सेलेक्शन आयोग) कर देना चाहिए. वहां का मंत्र भी तो आख़िर सबसे ताक़तवर के अस्तित्व का ही है.

> हरेक घोषणापत्र की अप्रासंगिकता उसके बेवकूफाना तथ्य से जाहिर है. दल इतनी चीज़ें मुफ़्त ही बांट रहे हैं कि हमारा काम बिना मुद्रा के भी चल सकता है. खोखले दावे करने में पागलपन के सारे रिकॉर्ड टूट रहे हैं. आख़िर भविष्य की कोई भी सरकार इन वादों को पूरा करने के खर्च का वहन कैसे करेगी? किसे चिंता है?

लोकशाही की अपील के पारंपरिक औज़ार तो स्वरक्षा की संस्कृति में फ़ीके पड़ चुके हैं. विचारधारा के ख़ात्मे पर रोने का भी कोई मतलब नहीं है. रद्दियों की नीलामी में दृढ़ता का अस्तित्व नहीं होता. विचारधारा तो बहुत दूर की बात है. यह चुनाव तो एक नए विचार से भी अछूता है. क्या आपको कोई ऐसा भाषण याद आता है, जिसमें कोई नई बात कही गई हो.

हरेक घोषणापत्र की अप्रासंगिकता उसके बेवकूफाना तथ्य से जाहिर है. दल इतनी चीज़ें मुफ़्त ही बांट रहे हैं कि हमारा काम बिना मुद्रा के भी चल सकता है. खोखले दावे करने में पागलपन के सारे रिकॉर्ड टूट रहे हैं. आख़िर भविष्य की कोई भी सरकार इन वादों को पूरा करने के खर्च का वहन कैसे करेगी? किसे चिंता है? किसी सत्ताधारी दल के इस तरह के वादे तो बिल्कुल स्पष्ट सवाल खड़ा करते हैं : आख़िर आपके शासनकाल में इन वायदों को पूरा क्यों नहीं किया गया?

राजनेता जानते हैं कि उनकी प्रजाति में कोई भी मासूम नहीं है. हरेक चुनाव दरअसल एक रशियन रॉलेट है. कोई न कोई तो इसमें फ़ना होगा ही. हालांकि इन दलों के भाषण और घोषणापत्रों से ज़ाहिर है कि वह मतदाताओं को काठ का उल्लू समझते हैं. हालांकि पैकेजिंग की चमक-दमक इस सच्चाई को नहीं छिपा सकती कि पैकेज तो खाली है. जब अल्पसंख्यक सुनते हैं कि इस बार उनको आरक्षण मिलेगा, तो वह आनंद से नाचने नहीं लगते. उनके पास दरअसल चुनाव सबसे बेहतर का नहीं बल्कि सबसे कम बदतर का है. उनका वोट तो वैसे भी अनिश्चितता की धुंध में बिखर कर रह जाएगा. फिलहाल तो केवल एक अहम नेता है, जो किसी दूसरी पार्टी से कोई गठबंधन नहीं कर रही. मायावती ने साफ तौर पर फ़ैसला कर लिया है कि समझौते का समय तो तभी है, जब हरेक प्रजाति की ताक़त बैलेट-बॉक्स में बंद हो जाए. वह मित्रों के प्रति नम्र हैं, उनको बढ़िया डिनर भी करा रही हैं, पर वह सीटों के बंटवारों के मसले पर पूरी तरह से उदासीन हैं. वह किसी भी तरह की छूट नहीं चाहतीं और न ही किसी तरह की उदारता दिखा रही हैं. वह कांग्रेस या भाजपा से अधिक सीटों पर चुनाव लड़ रही हैं. लगभग हरेक निर्वाचन क्षेत्र में बसपा का एक उम्मीदवार है. क्या यह केवल दिखावा है. लेकिन इस खर्चीली बहादुरी के पीछे कोई सशक्त योजना हो. कुछ आंकड़े शायद हमें उनकी योजना के बारे में कुछ संकेत दे सकें. 1989 में उत्तर प्रदेश में उनको 9.41 फीसदी वोट मिले थे. कांग्रेस को उसी साल 27.9 फ़ीसदी मत मिले थे. मायावती को 13 और कांग्रेस को 94 सीटें मिली थीं. उस वर्ष से लेकर 1991, 1993, 1996, 2002 और 2007 के चुनावों में उनके विकास का ग्राफ देखिए. क्रमशः वह आंकड़े कुछ इस प्रकार हैं. 9.44 और 17.32, 11.32 और 15.08 फीसदी, 19.64 और 8.35 फीसदी, 23.06 और 8.96 फीसदी, 30.4 और 8.84 फीसदी. मायावती 13 सीटों से 206 सीटों तक पहुंच गई. कांग्रेस की सीटें 94 से घट कर 22 तक पहुंच गई है.

छह चुनाव में ही हालात पूरी तरह बदल गए हैं. कई उम्मीदवार 2009 में प्रधानमंत्री पद के लिए हैं. हालांकि तीन के साथ अभी समय है. राहुल गांधी, मायावती और नरेंद्र मोदी. इनमें हरेक 2009 में बेहतर करना चाहेगा, पर यही साल उनके सपनों का नहीं है. उनका लक्ष्य तो इस बार बीज बोने का और अगले चुनाव का इंतज़ार करने का है, जो उनके हिसाब से पांच साल के भीतर ही हो जाएगा. उम्र अभी उनके साथ है. उनको देश को अपने पीछे लाने के नए रास्ते तलाशने हैं. जैसा कि डार्विन ने कहा था, विकास को जाहिर तौर पर समय की ज़रूरत होती है. हालांकि इंसान अगर सर्वश्रेख़प्रजाति है, तो ऐसा बुद्धि के बगैर संभव नहीं था.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हमारा संविधान ही नागरिकों और सरकार के बीच की डोर है

और न्यायालय ने इसकी भावना को बचाया है

रवि किशोर

भारत का संविधान ही वह आधारभूत दस्तावेज है, जो भारत की राजनीति और नीति को तय करनेवाला प्रारूप बनाता है. संविधान ही वह डोर है, जिससे भारत की सरकार और यहां के लोग बंधे हैं. देश के किसी भी कानून से ऊपर और श्रेख़ संविधान का निर्माण भारत की संविधान सभा ने किया था, जो पहली बार नई दिल्ली में 9 दिसंबर 1946 को बैठी थी. यह बैठक कांस्टीट्यूशन हॉल में हुई थी, जिसे अब संसद के केंद्रीय कक्ष के नाम से जाना जाता है. सभा की अगली कतार में पंडित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य जेबी कृपलानी, डॉ राजेंद्र प्रसाद, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री हरेकृष्ण माहताब, पंडित गोविंद बल्लभ पंत, डॉ बीआर अंबेदकर, श्री शरतचंद्र बोस, श्री सी राजगोपालाचारी और श्री एम आसफ अली थे. कुल मिला कर दो सौ सात प्रतिनिधि मौजूद थे, जिनमें नौ महिलाएं भी थीं.

भारतीय संविधान केवल राजनीतिक और कानूनी दस्तावेज नहीं है. यह तो सामाजिक-आर्थिक सोच प्रस्तुत करनेवाला दस्तावेज भी है, जो राज्य के अलग अंगों के काम करने के तरीके, कानूनी ढांचे और नीति-निर्देशक तत्व मुहैया कराता है. यह उन ताक़तों को भी नियंत्रित करता है, जो राज्य के विविध अंगों को मिली हुई हैं. संविधान ने संघीय ढांचे के तहत भारतीय न्यायपालिका और खासकर उच्चतम न्यायालय को किसी विवाद को निपटाने और निर्देश देने के अधिकार दिए हैं. सरकार के किसी अंग और किसी नागरिक के बीच विवाद (दोनों ही पक्षों के अधिकारों और कर्तव्यों को लेकर) की दशा में भी न्यायालय का ही फ़ैसला स्वीकार किया जाता है. संविधान का ढांचा बनानेवाले इस बात से पूरी तरह परिचित थे कि संविधान कोई जड़ दस्तावेज नहीं होगा, बल्कि इसकी गतिशीलता लगातार बनी रहेगी. संविधान को समाज और राजनीति की बदलती ज़रूरतों के मुताबिक ढलना और बदलना होगा. समय के प्रवाह के साथ और लगातार विकासशील सामाजिक-आर्थिक ज़रूरतों और गतिशीलता के मुताबिक शासन करने के तरीके में व्यापक बदलाव लाने होंगे. कोई भी देश और यहां तक कि पूरी दुनिया भी स्थिर नहीं रह सकती. आख़िर एक जीवंत और विकासशील समाज के लिए गतिशीलता ही एक प्राकृतिक घटना है. इसी तरह, भारतीय संविधान और नीति-निर्माताओं ने सामाजिक बदलाव और परिवर्तन की ज़रूरतों के हिसाब से संविधान में अब तक कई सारे संशोधन किए हैं.

बदलाव की इस प्रक्रिया को ध्यान में रख कर ही भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में अनुच्छेद 368 जोड़ा था, जो संशोधन की प्रक्रिया से संबंधित है. भारतीय संविधान के नियम न तो बहुत सख़्त हैं, न ही बहुत ढीले-ढाले. सच पूछिए, तो यह दोनों का आदर्श मिश्रण है. संविधान ज़रूरत के मुताबिक सख़्त है और लचीला भी. भारतीय संविधान के निर्माता इस बात से पूरी तरह परिचित थे कि अगर संविधान बहुत लचीला हुआ, तो सत्ताधारी दल अपनी मर्जी चलाएंगे. बहुमत के नाम पर अपनी ही हांकेंगे. इसी वजह से संविधान-निर्माताओं ने बहुत ही संतुलित रास्ता अपनाया. प्रक्रिया को बहुत सख़्त नहीं रखा ताकि ज़रूरी संशोधन किए जा सकें. न ही इसे बहुत लचीला रखा ताकि अनचाहे और ग़ैरज़रूरी बदलावों पर भी रोक लगाई जा सके. भारतीय संविधान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मूलभूत अधिकारों और इनकी रक्षा के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था है.

न्यायपालिका को वह ताक़त दी गई है ताकि वह सभी कानूनों की संवैधानिक सत्ता बहाल कर सके. अगर कोई कानून, जिसे संसद या किसी राज्य की विधायिका ने पारित किया है, संविधान के किसी भी पहलू का उल्लंघन करता है, तो उच्चतम न्यायालय के पास अधिकार है कि वह ऐसे कानून को निरस्त कर दे. विधायिका द्वारा पारित कानूनों के न्यायिक विश्लेषण की इस प्रक्रिया को संविधान के अनुच्छेद 368 में बताया गया है. हालांकि इस बात को भी समझने की ज़रूरत है कि एक निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायपालिका का मतलब प्रजातांत्रिक व्यवस्था और नीतियों की मुख़ालफत करना नहीं है. इसके उलट न्यायपालिका का कर्तव्य तो संविधान की रोशनी में विधायिका द्वारा मान्य नीतियों की समीक्षा और विश्लेषण करना है. संशोधन की यह क्षमता संविधान का सबसे वांछित प्रावधान है, ताकि बदलाव की ज़रूरत को संविधान की रोशनी में समझा जा सके और लक्ष्य हासिल हो सके. न्यायिक समीक्षा के मानकों को बढ़ाते समय बेहद सावधानी से काम करने की ज़रूरत है. किसी विधान को असंवैधानिक बताने के न्यायालयों के अधिकार की ज़रूरत इस वजह से नहीं पड़ी कि न्यायपालिका को सर्वोच्च बनाना था, बल्कि संविधान के निर्माताओं ने यह व्यवस्था इसलिए की ताकि विधायिका और कार्यपालिका देश के कानून के मुताबिक अपने काम कर सकें.

माननीय उच्चतम न्यायालय ने न केवल संविधान की व्याख्या कर इसमें निहित आदर्शों का बचाव किया है, बल्कि कई ऐतिहासिक फ़ैसलों के जरिए कानून के विकास में भी मदद की है. केशवानंद भारती के मामले से इसकी शुरुआत हुई, जिसने संविधान के मूलभूत ढांचे के सिद्धांत रखे. इसी मामले में बहुमत के फ़ैसले से यह बताया गया कि संविधान के मूल ढांचे को नहीं बदला जा सकता है. यही फ़ैसला मिनर्वा मिल्स और गोलकनाथ इत्यादि के मामले में भी दुहराया गया.

इसी तरह माननीय उच्चतम न्यायालय ने कई ऐसे फ़ैसले सुनाए हैं, जिनसे मानवाधिकारों की बहाली हुई और जनहित याचिकाओं का दायरा बढ़ा. जनहित याचिका का इस्तेमाल पहली बार फर्टिलाइज़र कॉरपोरेशन कामगार यूनियन बनाम भारतीय गणराज्य मामले में किया गया था. न्यायिक सक्रियता के सिद्धांत, जिसे लोकप्रय तौर पर जनहित याचिका के नाम से जाना जाता है, के माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने हैबियस कॉर्पस (बंदी प्रत्यक्षीकरण) का दायरा बढ़ा दिया. सुनील बत्रा, बंधुआ मुक्ति मोर्चा और उपेंद्र बक्शी के मामलों में यही हुआ. एसआर बोम्मई मामले में धर्मनिरपेक्षता को पारिभाषित किया गया. समानता के अधिकार को मेनका गांधी मामले में मज़बूती से पारिभाषित किया गया. न्यायाधीशों की नियुक्ति के दिशा-निर्देश सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड बनाम भारतीय गणराज्य के मामले में दिए गए. कार्यालय में यौन-दुर्व्यवहार को विशाखा मामले में पारिभाषित किया गया. इसमें नियोक्ताओं और दूसरी ज़िम्मेदार संस्थाओं और व्यक्तियों के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश दिए गए ताकि काम करने वाली महिलाओं के साथ यौन-दुर्व्यवहार को रोका जा सके. आरक्षण के मसले पर इंद्रा सॉहने मामले में ऐतिहासिक निर्णय दिया गया. इसे बाद में अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारतीय गणराज्य में दुहराया गया. पर्यावरण के मसले पर एम सी मेहता मामले में अभूतपूर्व निर्णय दिया गया. ऊपर बताए गए सारे मामले केवल एक संकेतक हैं. पूरी सूची तो अंतहीन है. ऐतिहासिक फैसलों के तहत उच्चतम न्यायालय ने आमजनों के लिए डंके की चोट पर संवैधानिक गरिमा और भावना की प्रतिख़ की है. हम लेखों की एक सीरीज़ के जरिए आप पाठकों को उन ऐतिहासिक फ़ैसलों और मसलों की जानकारी देंगे. केंद्र में केवल वही फ़ैसले नहीं रहेंगे, जो हमारे लिए अहम हैं, बल्कि हम उन मसलों को भी रेखांकित करेंगे, जो आज की तारीख़ में काफी अहम हैं. जैसे भारतीय राजनीति का अपराधीकरण, अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा, पर्यावरण, आतंकवाद और हरेक नागरिक के अधिकार और कर्तव्य वगैरह.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

महोदय,
चौथी दुनिया के पुनर्प्रकाशन के प्रथम अंक को देख कर हार्दिक प्रसन्नता हुई. *चौथी दुनिया* का मैं नियमित पाठक रहा हूं. जब इसका प्रकाशन बंद हुआ था, तो मुझे काफी तक़लीफ़ हुई थी. ओबामा की सच्चाई और आडवाणी की नियति पढ़कर राजनीति से जुड़े कई सवालों के जवाब मिल गए. बाकी सभी गद्यांश भी महत्वपूर्ण और जानकारीवर्धक हैं. निष्पक्ष पत्रकारिता में *चौथी दुनिया* शायद अकेला हिंदी अख़बार है. उम्मीद है, आगे भी ऐसी ही सार्थक पत्रकारिता का उदाहरण *चौथी दुनिया* पेश करता रहेगा.

श्रवण कुमार
देवघर
झारखंड

प्रिय संपादक जी,
इन दिनों पत्रकारिता में जो भेड़चाल का प्रचलन है, उसमें *चौथी दुनिया* का आना काफी सुखद अहसास है. सच्चाई और ईमानदारी की पत्रकारिता का दायित्व जो *चौथी दुनिया* ने उठाया है, उसके लिए ढेरों शुभकामनाएं. अख़बार का प्रथम अंक काफी ज्ञानवर्धक था. खासकर **बीजेपी की सरकार बनाना चाहता है मोसाद** लेख काफी दिलचस्प और जानकारी देने वाला था. बाक़ी लेख भी अच्छे थे. कृपया फिल्म पर कुछ नई जानकारी प्रदान करने का कष्ट करें.

आशीष कुमार
श्यामली
उत्तर प्रदेश

संपादक महोदय,
लोकसभा चुनाव की घोषणा क्या हुई, राजनीति के मंच पर नाटक शुरू हो गया. ऐसे में अमूमन सभी पत्र-पत्रिकाएं चाटुकारिता की पत्रकारिता कर रहे हैं. ऐसे में *चौथी दुनिया* में प्रकाशित लेख सुकून पहुंचाते हैं, जिनमें सच्चाई भी है और अन्याय के प्रति विद्रोह भी. मैं आशा करता हूं कि यह समाचार पत्र दबे-कुचलों की आवाज़ बन कर उभरेगा.

पुरुषोत्तम कुमार
नवादा
बिहार

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अख़बार

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें, तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें, तो रिपोर्ट **story.chauthiduniya@gmail.com** *पर भेज सकते हैं.*

जब तोप मुकाबिल हो

लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी

देश के लोगों का संसदीय व्यवस्था से भरोसा उठता जा रहा है. हमें ऐसे लोग अब बड़ी संख्या में मिल रहे हैं, जो कहते हैं कि इस आज़ादी से तो गुलामी अच्छी थी. भारतीय लोकतंत्र के भीतर ऐसी निराशा की भावना का पैदा होना उनके भीतर डर पैदा कर रहा है, जिन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था सबसे अच्छी लगती है.

राजनैतिक दलों के लिए यह शर्म की बात है कि उनके कारनामों के नतीजे लोगों में लोकतंत्र के प्रति अनास्था पैदा करें. विभिन्न वर्ग अगर अपनी समस्याओं का हल लोकतांत्रिक व्यवस्था में न देखें, तो इसके जिम्मेदार वे हैं, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था चलाते हैं. विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का मिला-जुला नाम लोकतंत्र है और आज तीनों पर से देश की जनता का विश्वास उठता जा रहा है. ये तीनों अंग देश में समस्या सुलझाने की जगह उसे बढ़ा रहे हैं.

ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है, जो यह मानते हैं कि उनकी समस्याएं लोकतांत्रिक ढांचे में रह कर सुलझ ही नहीं सकती. लोगों की समस्याएं कार, अट्टालिकाएं या नए ब्रांड के सामानों का उपलब्ध न होना नहीं है, बल्कि समस्याएं बेरोज़गारी, बीमारी, शिक्षा, रोटी और मौत है. आज हमारा लोकतंत्र इन्हीं पर सबसे कम ध्यान दे रहा है. लोकसभा या राज्यसभा में स्वास्थ्य, शिक्षा, बेरोज़गारी और मंहगाई जैसे सवालों पर बहस ही नहीं होती. जब इन पर पैसे खर्च करने के लिए बजट पेश होता है, तो संसद खाली पड़ी रहती है. कई बार तो कोरम लायक सांसद भी नहीं होते. चूंकि लोकसभा या राज्यसभा का डर नहीं है, तो सरकार के लिए भी यह विषय प्राथमिकता में नहीं है. और यही स्थिति लोगों में लोकतंत्र के प्रति आस्था बढ़ा रही है.

अब दलों की विचारधारा का अंतर भी हमें नहीं दिखाई देता. नब्बे के बाद का राजनैतिक नक्शा इसीलिए निराशा का कारण बन रहा है, क्योंकि केवल नाम बदलिए, नारे वही मिलेंगे. राजनैतिक दलों के सामने दिल्ली की सत्ता पर कब्जा करना तो लक्ष्य है, पर देश कैसे बचा रहेगा, यह प्राथमिकता नहीं है. देश बचने का मतलब होता है, देश में रहने वाले हर वर्ग में इस बात का अहसास होना कि उसकी देश को चलाने में हिस्सेदारी है, उसकी समस्याओं और तकलीफों की ईमानदार सुनवाई है और उन्हें हल करने की गंभीर कोशिश है. जब यह अहसास ख़त्म होता है, तभी हाथों में हथियार आते हैं. अगर अपने-आप हथियार न आएं, तो कोई उन्हें पकड़ा देता है.

ऐसी ताक़तें हैं, जो देश के विकास की जगह हिंदू-मुसलमानों के भीतर द्वंद्व बढ़ाना चाहती हैं और देश को ऐसी जगह लाकर खड़ा कर देना चाहती हैं, जहां ये दोनों वर्ग केवल नफ़रत करें. पर यह खुशी की बात है कि न तो हिंदू और न ही मुसलमान अब तक इस जाल में फंसे हैं. अफ़सोस तो तब होता है, जब इन ताक़तों का साथ सरकार देती दिखाई देती है. लगता तो ऐसा है कि सरकार नाम की चीज़ समाप्त हो गई है और सत्ता में वे बैठे हैं, जिनके सामने न देश का पूरा नक्शा है और न उस नक्शे को समझने की अक़्ल. पिछले बीस सालों में मुल्क में लगभग हर राजनैतिक दल ने सीधे या परोक्ष रूप से सत्ता में हिस्सेदारी की है और सबने इसी धारणा को मज़बूत किया है कि उनके सामने देश का न कोई नक्शा है और न देश के सभी वर्गों की समस्याओं की समझ.

राजनैतिक दलों की कारगुज़ारियों और व्यवस्था के नाकारेपन से लोग कहने लगे हैं कि इस आज़ादी से तो अंग्रेज़ अच्छे थे. अंग्रेज़ों को याद करने का मतलब भविष्य की आशा की मौत है, और सारे तंत्र से जनता का मानसिक अलगाव है. अब निराशा सिर्फ इतनी नहीं है कि इस आज़ादी से तो अंग्रेज़ अच्छे थे, बल्कि बात आगे बढ़ गई है. सुन सकें तो राजनैतिक दल सुनें, कि अब लोग फौज को याद करने लगे हैं. फौज के लोगों की शाम की पार्टी में इस बात पर हर जगह बात होती है कि इन राजनीतिज्ञों से तो फौजी अच्छे हैं. हम देश को बचाने में जान देते हैं और इन राजनीतिज्ञों को इस बात पर शर्म नहीं कि ये देश को बर्बाद करने की होड़ लगाए हुए हैं. फौज के रिटायर्ड अफसर तो हर जगह गुस्से में नज़र आते हैं. जिन पर हत्या, लूट और बलात्कार के मुक़दमे चल रहे हैं, ऐसे मंत्रियों की सुरक्षा पर होने वाले खर्च इनकी आलोचना का बड़ा मुद्दा है. ये साफ कहते हैं कि जनता के प्रतिनिधियों को जब जनता से ही डर लगने लगे, तो वे जनता का प्रतिनिधित्व करने का हक़ खो देते हैं. आप ज़रा किसी फौजी अफसर को छेड़ दीजिए, फिर देखिए कि वह राज-नेताओं और नौकरशाहों को गाली देने के कैसे-कैसे तर्क निकाल कर लोकतांत्रिक व्यवस्था को ही सवाल बना देते हैं.

लखनऊ से दिल्ली आने वाली शताब्दी में एक रिटायर्ड फौजी अफसर और सहयात्रियों में देश की स्थिति पर बहस हो रही थी. फौजी अफसर की बातों में गुस्सा और व्यवस्था से नफ़रत थी. सहयात्रियों ने कहा कि अगर आप लोग सत्ता में आते हैं, तो क्या आप खाएंगे पिएंगे नहीं? उस फौजी अफसर ने तत्काल कहा कि ज़रूर खाएंगे और पिएंगे. पर हम मुर्गा खाएंगे, देश का पैसा और नौजवानों का भविष्य नहीं खाएंगे, हम व्हिस्की पिएंगे लेकिन आम जनता का खून नहीं पिएंगे. लोग सन्न थे और धीरे-धीरे सभी उस अफसर की भाषा बोलने लगे.

क्या इस स्थिति को संसद में जाने की और सत्ता संभालने की इच्छा रखने वाले राजनैतिक दल शुभ संकेत मानते हैं? मानें भी क्यों न, क्योंकि खुद उनका लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भरोसा जो नहीं है. किसी भी राजनैतिक दल में आंतरिक लोकतंत्र तो है ही नहीं, लोकतांत्रिक सवाल उठाने की भी अब कोई हिम्मत नहीं करता. अगर कोई करता है, तो उसे दल से ही हटा दिया जाता है. ऐसे लोग बड़ी संख्या में हैं, जो सोचने-समझने वाले हैं, जनता की समस्याओं के हल के लिए प्रतिबद्ध हैं, लेकिन राजनैतिक रूप से अप्रासंगिक हो चुके हैं.

यह स्थिति लोकतंत्र के लिए ख़तरा साबित हो सकती है, क्योंकि इसकी तार्किक परिणति लोकतंत्र के ख़ात्मे में होती है. जो दल स्वयं लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं, वे देश में भी लोकतंत्र नहीं चला सकते और न लोकतंत्र बचा सकते हैं.

अभी की एक घटना जाननी चाहिए. लखनऊ से दिल्ली आने वाली शताब्दी में एक रिटायर्ड फौजी अफसर और सहयात्रियों में देश की स्थिति पर बहस हो रही थी. फौजी अफसर की बातों में गुस्सा और व्यवस्था से नफ़रत थी. सहयात्रियों ने कहा कि अगर आप लोग सत्ता में आते हैं, तो क्या आप खाएंगे पिएंगे नहीं? उस फौजी अफसर ने तत्काल कहा कि ज़रूर खाएंगे और पिएंगे. पर हम मुर्गा खाएंगे, देश का पैसा और नौजवानों का भविष्य नहीं खाएंगे, हम व्हिस्की पिएंगे लेकिन आम जनता का खून नहीं पिएंगे. लोग सन्न थे और धीरे-धीरे सभी उस अफसर की भाषा बोलने लगे.

इस संकेत को गंभीर समझना चाहिए. राजनेताओं को, चाहे वे किसी भी दल में हों, अपने को सुधारना चाहिए और देश के ग़रीब, वंचित, दलित, अल्पसंख्यक, पिछड़े तबकों पर ध्यान देना चाहिए तथा बेरोज़गारी, शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास की उन योजनाओं पर ध्यान देना चाहिए, जिनसे आम आदमी को फ़ायदा मिले. अन्यथा लोग लोकतंत्र के सबसे ख़राब विकल्प के बारे में आदर से सोचने लगेंगे और तब राजनेता जनता के भयानक गुस्से का शिकार हो जाएंगे.

हिंदुस्तान और पाकिस्तान के लिए एक जैसा ख़तरा

तीस मार्च का दिन पाकिस्तान के लिए ख़तरनाक था, क्योंकि उस दिन पाकिस्तान में पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में घुस कर आंतकवादियों ने हमला किया था. हिंदुस्तान के साथ सारी दुनिया ने टेलीविज़न पर आठ घंटे चली इस मुठभेड़ को देखा. मैंने रात ग्यारह बजे लाहौर फोन किया. यूसुफ़ इरफ़ान लाहौर में रहते हैं, सरकारी अधिकारी हैं और लेखक हैं. मैंने चिंता जताई, तो यूसुफ़ इरफ़ान ने कहा, 'जिस शहर में रोज़ हादसे होते हों, तो वहां अब हादसा डराता नहीं. लगता है रोज़मर्रा का कोई हिस्सा है, जो हो गया.' मैंने भी कहा कि जब शहर ही हादसों के शहर में बदल जाएं, तो इंसान करे क्या!

यूसुफ़ इरफ़ान का दर्द, हर पाकिस्तानी और हर भारतीय का दर्द है, क्योंकि हम भी तो उसी स्थिति में जी रहे हैं. लेकिन यूसुफ़ इरफ़ान एक बात की ओर ध्यान नहीं दे पाए कि यह हमला आम हमलों से अलग था. इसे हम आतंकवादी कार्रवाई कह कर टाल नहीं सकते. यह हमला बेनज़ीर भुट्टो की शहादत वाले हमले, मस्जिदों में होने वाले बम विस्फोटों और आत्मघाती हमलों से भी अलग था. यह हमला दरअसल पाकिस्तानी सत्ता के ऊपर पाकिस्तान के अंदर रहने वाली चुनिंदा ताक़तों का संगठित रूप से किया गया हमला था. जब कोई हमला, ट्रेज़री पुलिस, सेना, या जेल पर हो, तो वह सत्ता पर हमला माना जाता है. पाकिस्तान के गृहमंत्री रहमान मलिक ने सही कहा कि या तो मुल्क तालिबान को सौंप दें या फिर फाइट बैक करें.

रहमान मलिक का यह कहना कि मुल्क तालिबान को सौंप दें, बतलाता है कि हमला तालिबान ने किया था. अब पाकिस्तान की जनता को भी तय करना है कि उनका कितना झुकाव तालिबान की तरफ़ है. तालिबान का राजनैतिक दर्शन, तालिबान का क़ानून बनाने का आधार, तालिबान की धर्म को, इस्लाम को लेकर व्याख्या, तालिबान की कुरान शरीफ़ को अपने ढंग से समझाने का अभियान और अब पाकिस्तान की सरकार और जनता के ख़िलाफ़ हथियार बंद विद्रोह की घोषणा, पाकिस्तान को उस चौराहे पर खड़ा कर देते हैं, जहां से उसे अपने लिए किसी रास्ते को चुनना पड़ेगा. सवाल यही है कि क्या पाकिस्तान ऐसा करेगा?

पाकिस्तान में यदि सरकार ने आम आदमी की खुशहाली के लिए योजनाएं नहीं बनाई, उसकी ज़िंदगी की बेहतरी के लिए कुछ नहीं किया, तो भूखा और बदहाल आदमी ग़लत बात को सही मानेगा और सरकार के ख़िलाफ़ हथियारबंद लड़ाई में सहयोग देने लगेगा. ठीक इसी तरह भारत के हालात भी हैं. यहां की सरकार ने ग़रीबों से जुड़ी योजनाओं को बंद करने का फ़ैसला चुपचाप ले लिया है और कल्याणकारी राज्य से बाज़ार आधारित राज्य के रास्ते पर चलना शुरू कर दिया है.

हिंदुस्तान में नक्सलवादी हैं, जो राजसत्ता बंदूक के बल पर हासिल करना चाहते हैं. उन्होंने भी बिहार, छत्तीसगढ़ और आंध्रप्रदेश की जेलों पर, कई जगह ट्रेज़री पर और बहुत सी जगह रेलवे स्टेशनों पर हमले किए हैं. कई जगहों पर तो पुलिस वाले अपनी सलामती के लिए नक्सलवादियों को हफ्ते देते हैं. जो ठेकेदार उनके क्षेत्र में सड़क बनाते हैं, उन्हें नक्सलवादियों को टैक्स देना पड़ता है. भारत में भी सरकारें आज इस बात की अनदेखी कर रही हैं, जिसका खामियाज़ा आंध्र, महाराष्ट्र, बिहार जैसी जगहों पर लोगों को भुगतना पड़ रहा है. उन्हें एक तरफ़ सरकार का, तो दूसरी तरफ नक्सलवादियों की नाराज़गी का शिकार होना पड़ता है और अंत में वे नक्सलवादियों के साथ हो जाते हैं.

पर दोनों मुल्कों में एक फर्क है. भारत में ग़रीबों की सत्ता पर कब्ज़े की लड़ाई की बात नक्सलवादी कहते हैं, जबकि पाकिस्तान में धर्म के आधार पर सत्ता पर कब्ज़ा करने की बात तालिबान कहते हैं, और धर्म भी वह, जिसे वे सही मानें. भारत और पाकिस्तान के लोगों की राय की रोशनी में दोनों देशों की सरकारों को सही कदम उठाने चाहिए. दुनिया भर के मुसलमानों को, जिनमें पाकिस्तान प्रमुख है, अब अपने लिए कई फ़ैसले करने का समय आ गया है. इस्लाम के अंदर चल रहे विभिन्न स्कूल ऑफ थॉट के लोगों को बैठ कर इस्लाम के सिद्धांतों की व्याख्या करनी चाहिए. कुरान शरीफ़ सचमुच क्या कहता है, इसे आज की रोशनी में पारिभाषित करना चाहिए, क्योंकि हमारे सामने इतनी तरह की व्याख्याएं आ चुकी हैं कि वे सब, जो इस्लाम को सबसे अच्छे धर्मों में एक मानते हैं, दिग्भ्रमित हो चुके हैं. क्या तालिबानी व्याख्या सही है या फिर जिस कुरान शरीफ़ के अनुवाद को हमने पढ़ा है, वह सही है. इस बहस का अंत तभी हो सकता है, जब इस्लाम के विभिन्न स्कूल ऑफ थाट्स के विद्वान एक राय से अपनी बात दुनिया के सामने रखें. एक बात मैं विनम्रता से कहना चाहता हूं कि इस्लाम के ऊपर एकता होनी चाहिए न कि विभिन्न स्कूल ऑफ थाट्स को लेकर आपस में अलगाव. पाकिस्तान और भारत की सरकारों के लिए चेतावनी की घंटी बज उठी है. पाकिस्तान में यदि सरकार ने आम आदमी की खुशहाली के लिए योजनाएं नहीं बनाई, उसकी ज़िंदगी की बेहतरी के लिए कुछ नहीं किया, तो भूखा और बदहाल आदमी ग़लत बात को सही मानेगा और सरकार के ख़िलाफ़ हथियारबंद लड़ाई में सहयोग देने लगेगा. ठीक इसी तरह भारत के हालात भी हैं. यहां की सरकार ने ग़रीबों से जुड़ी योजनाओं को बंद करने का फ़ैसला चुपचाप ले लिया है और कल्याणकारी राज्य से बाज़ार आधारित राज्य के रास्ते पर चलना शुरू कर दिया है. परिणाम हो रहा है कि ग़रीब धीरे-धीरे उन जगहों पर उन ताक़तों का समर्थन दे रहा है, जहां उसके नाम पर लड़ाई लड़ने की बात की जा रही है. ग़रीब तबक़ों को लगता है कि जो सरकार के ख़िलाफ़, कारगर लड़ाई की बात करता है, सही है. लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि वह राजनैतिक दलों को सही मान रहा है. उसे लगता है कि राजनीति में जो है, वे लुटेरे हैं, इसीलिए वह उनकी ओर देख रहा है, जो चुनावी राजनीति में जाने की बात नहीं करते.

बातें भले अलग हों, लेकिन एक चीज़ दोनों देशों में समान है कि सरकारों के ख़िलाफ़ संगठित हथियारबंद अभियान चलाने की योजना कहीं न कहीं बन रही है. इस आग को गोली की आग से नहीं बुझाया जा सकता. इसे बुझाने के लिए समझदारी और योजनाओं को पूरी तरह से जनता के पक्ष में करने की ज़रूरत है. पर मुश्किल है कि दोनों देशों की सरकार चलाने वाले, उनका विरोध कर सरकार में जाने की आशा करने वाले, दोनों ही समस्या को मानवीय कम, क़ानून व्यवस्था की ज़्यादा मानते हैं. यह ग़लत आकलन दोनों देशों की सरकारों के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा कर देगा और धीरे-धीरे अराजक गृहयुद्ध की ओर ले जाने लगेगा. पाकिस्तान में आग जिस तरह कराची, लाहौर और पेशावर तक पहुंच गई है, हमारे यहां कलकत्ता, दिल्ली, बंबई, चेन्नई तक नहीं पहुंची है, पर उसने झलक तो दिखा दी है. पहल दोनों देशों की सरकारों को ही करनी होगी. आम आदमी को विश्वास में ले, उसकी बेहतरी के काम तत्काल शुरू होने चाहिए. नहीं तो इस्लामाबाद हो या दिल्ली, चैन से चलना और चैन से सोना, दोनों जगह मुश्किल हो जाएगा.

चौथी दुनिया

feedback.chauthiduniya@gmail.com

विदर्भ से ज़्यादा चीख़ें हैं छत्तीसगढ़ में

हर रोज़ चार किसान चढ़ते हैं सूली पर

विदर्भ से डेढ़ गुना ज़्यादा किसान छत्तीसगढ़ में ख़ुदकुशी करते हैं. आंकड़ों के लिहाज़ से विदर्भ छत्तीसगढ़ से पहले आता है. लेकिन किसानों की आत्महत्या से जुड़ा सामान्य ज्ञान विदर्भ में ही घूम कर क्यों रह जाता है? विदर्भ की जितनी फ़िक्र की जाती है, उससे ज़्यादा की जानी चाहिए, मगर छत्तीसगढ़ परिदृश्य से ग़ायब क्यों है? क्या इसके पीछे कोई सोचा-समझा समाजशास्त्र काम कर रहा है? छत्तीसगढ़ की सरकार कहती है कि ये आंकड़े झूठे हैं. वहां के पत्रकार कहते हैं कि क्या हम अंधे हैं? सच क्या है? नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के आंकड़ों का क्या करें? देश की सरकार से लेकर 'नेशनल मीडिया' की निगाह वहां क्यों नहीं जा रही? क्या यह सब कुछ अनायास है? यह रपट हम सबके आग्रहों को आईना दिखा रही है...

भारत में आत्महत्याओं का रिकॉर्ड रखने की ज़िम्मेदारी पुलिस के पास होती है. प्रदेशों से उन आंकड़ों को इकट्ठा कर रखने का ज़िम्मा नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो का होता है. दिल्ली स्थित नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो साल में एक बार इन आत्महत्याओं के आंकड़ों को जारी करता है, जिसमें किसानी का व्यवसाय करने वाले लोगों का भी एक कॉलम होता है. किसान आत्महत्या के हर साल के नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के आंकड़े देखें, तो 5 राज्य उनमें सबसे आगे हैं. पर ताज्जुब की बात यह है कि 5 में से 4 राज्यों के बारे में चर्चा होती है, मीडिया उसके बारे में लिखता है, फिल्में बनाता है, प्रधानमंत्री और दूसरे बड़े नेता उन राज्यों में पीड़ितों से मिलने जाते हैं, पर इस पांचवें राज्य के बारे में कहीं कोई चर्चा नहीं होती. नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो द्वारा दिए आंकड़ों का विभिन्न तरीके से विश्लेषण किया जा सकता है. मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवेलपमेंट स्टडीज़ के प्रोफेसर के नागराज इसका अध्ययन प्रति एक लाख किसानों पर आत्महत्या की दर निकाल कर करते हैं और उसे वे फार्मर सुसाइड रेट कहते हैं. मुंबई के इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ डेवेलपमेंट रिसर्च के प्रोफेसर श्रीजीत मिश्रा इन आंकड़ों को प्रति एक लाख पुरुष किसान की दर से निकालते हैं और उसे सुसाइड मोर्टालिटी रेट कहते हैं.

इन सभी गणनाओं में किसान आत्महत्या की दर में यह पांचवां प्रदेश छत्तीसगढ़ पहले-तीसरे स्थान के अंदर आता है, पर छत्तीसगढ़ की सरकार कहती है कि ये आंकड़े झूठे हैं. छत्तीसगढ़ की सरकार और वहां का मीडिया कहता है कि छत्तीसगढ़ में किसान धान की खेती करता है, जिसका लागत मूल्य अधिक नहीं होता, इसलिए छत्तीसगढ़ का किसान कर्ज़ नहीं लेता और इसलिए छत्तीसगढ़ में हो रही किसानों की आत्महत्या का खेती से कोई संबंध नहीं है.

इस बीच कनाडा में शोध कर रहे डॉ युवराज गजपाल ने नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के आंकड़ों की प्रति 1 लाख जनसंख्या के आधार पर गणना की, तो पाया कि छत्तीसगढ़ में प्रति 1 लाख व्यक्ति किसान आत्महत्या की दर देश में सबसे अधिक है. और ऐसा सिर्फ एक साल में नहीं, बल्कि छत्तीसगढ़ प्रदेश बनने के बाद से, जब से वहां के आत्महत्या के आंकड़े मौजूद हैं, हर साल की यही कहानी है. सन 2006 में प्रति एक लाख जनसंख्या पर छत्तीसगढ़ में 6.49 किसानों ने आत्महत्या की, जबकि उन चार प्रदेशों में, जिनकी चारों ओर चर्चा है, उनके लिए यह आंकड़ा 4.28 (महाराष्ट्र), 3.37 (केरल), 3.24 (आंध्र) और 2.57 (कर्नाटक) का रहा. वर्ष 2007-08 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार छत्तीसगढ़ में किसान परिवारों की संख्या 32.55 लाख है. यानी प्रदेश में खातेदार किसानों की संख्या प्रदेश की कुल आबादी का 15 फीसदी से कम है.

और राज्यों में इस विषय पर हुए अध्ययन कहते हैं कि पुलिस सिर्फ उस व्यक्ति की आत्महत्या को किसान की आत्महत्या की तरह दर्ज करती है, जिसके नाम पर कोई खेती हो. यानी पुलिस की परिभाषा के अनुसार छत्तीसगढ़ में किसानों की संख्या 15 फीसदी से कम है, पर छत्तीसगढ़ में कुल आत्महत्या करने वालों में किसान की तरह दर्ज लोगों का प्रतिशत 33 से अधिक है. तो यदि सरकार का यह तर्क मान लें कि छत्तीसगढ़ में किसान खेती नहीं बल्कि दीगर कारणों से आत्महत्या कर रहे हैं, तो सरकार को आत्महत्या की मूल वजह साफ करनी चाहिए. सरकार को ये भी साफ करना चाहिए कि किसान अन्य व्यवसाय की तुलना में दुगुने दर से आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? किसानों की वह कौन-सी तक़लीफ़ है, जो उन्हें इतने बड़े पैमाने पर आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहे हैं.

खैर, सरकार इनके जवाब न भी दे, तो उन जवाबों के लिए अधिक दूर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. हालाकि छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री यह बयान देते हैं कि मैंने सारे कलक्टरों से रिकॉर्ड चेक कर लिया है – छत्तीसगढ़ में किसी भी किसान ने कर्ज़ के चलते आत्महत्या नहीं की है, पर सच ये है कि राज्य पुलिस की डायरी कर्ज़ के चलते किसानों द्वारा की गई आत्महत्या से भरी पड़ी है. पुलिस के रिक़ार्ड के अनुसार राज्य में किसानों द्वारा की गई आत्महत्या के ज़्यादातर मामलों की वजह अज्ञात की श्रेणी में रखी गई है. उसके बाद नंबर आता है झगड़ा, बीमारी, मानसिक स्थिति ठीक न होना और अत्यधिक शराब पीना. कुछ मज़ेदार कारण भी हैं, जैसे पेट दर्द होने के कारण और तैश में आकर आदि.

कृषि वैज्ञानिक संकेत ठाकुर बताते हैं, छत्तीसगढ़ में धान की खेती कर रहे किसानों की आमदनी कई सालों से लगातार कम हो रही है. धान का उत्पादन मूल्य तेज़ी से बढ़ रहा है और उसके अनुपात में उत्पादन और धान के समर्थन मूल्य में उतनी बढ़ोत्तरी नहीं हुई है. इस लगातार घटती आय के कारण किसान तनाव में रहता है और यद्यपि आत्महत्या का तात्कालिक कारण कुछ और हो सकता है, पर अगर आप इन किसान आत्महत्या के मामलों की तह में जाएंगे, तो पाएंगे कि इनमें से ज़्यादातर आत्महत्याओं के लिए खेती से घटती आमदनी ज़िम्मेदार है. संकेत ठाकुर कहते हैं, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना के कारण मज़दूरी की दर तेज़ी से बढ़ी है और यदि आप मज़दूरी की न्यूनतम दर के आधार पर गणना करें, तो धान का समर्थन मूल्य कम से कम ढाई गुना होना चाहिए. किसान नेता ललित चंद्रनाहू कहते हैं, छत्तीसगढ़ में लगभग सभी बड़े किसानों ने स्वयं खेती करना बंद कर दिया है. वे छोटे किसान को बंटाई में ज़मीन दे देते हैं. बड़ा किसान तो अपना हिस्सा पाकर खुश है, पर बड़े किसान को उसका हिस्सा देने के बाद छोटे किसान के पास अक्सर कुछ नहीं बचता और वह प्राय: कर्ज़ लेने को मजबूर हो जाता है. काफी भूमिहीन भी बड़े किसानों से ज़मीन लीज पर लेकर खेती करते हैं. इन लोगों को इनके नाम पर कोई ज़मीन न होने के कारण सहकारी बैंक से भी कोई कर्ज़ नहीं मिलता और ये स्थानीय साहूकारों से कर्ज़ लेने को मजबूर होते हैं. ये साहूकार कर्ज़ पर औने-पौने दाम वसूलते हैं. इस तथ्य से यह तो साफ हो ही जाता है कि पुलिस रिकार्ड में दर्ज मज़दूरों की आत्महत्या के पीछे सबसे ठोस वजह कर्ज़ ही है. चूंकि इन लोगों के नाम पर कोई ज़मीन नहीं है, इसलिए पुलिस रिकॉर्ड इन्हें किसान की तरह रिकार्ड नहीं करता, पर इनमें से कई ने खेती में कर्ज़ लेने के कारण आत्महत्या की होगी, ऐसा लगता है. छत्तीसगढ़ के राज्य क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि राज्य में हो रही अधिकतर किसान आत्महत्याएं धान उगानेवाले मध्य क्षेत्र में हो रही हैं और उत्तर तथा दक्षिण के आदिवासी बहुल इलाकों में किसान आत्महत्या की दर धान का कटोरा कहे जाने वाले मध्यक्षेत्र की तुलना में आधे से भी कम है. तो क्या आदिवासी इलाकों में जंगल से होने वाली अतिरिक्त आय के कारण आदिवासी किसान सुरक्षित हैं?

ये आंकड़े यह भी बताते हैं कि किसान उन्हीं ज़िलों में सबसे अधिक आत्महत्या कर रहे हैं, जिन जिलों में रासायनिक खाद और कीटनाशक की खपत सर्वाधिक है. छत्तीसगढ़ के वरिख़पत्रकार कहते हैं कि यदि हर दिन चार किसान आत्महत्या करेंगे, जैसा कि नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो का आंकड़ा कहता है, तो हमें दिखाई नहीं देगा क्या? हम क्या अंधे हैं? मुझे लगता है कि बजाय इस बहस में पड़ने के कि कौन अंधा है और कौन नहीं, इस विषय की व्यापक जांच पड़ताल होनी चाहिए. जैसा कि उन चार राज्यों में हुआ, जहां हो रही किसान आत्महत्याओं के बारे में मीडिया ने चर्चा की और वहां के राजनेताओं ने इस विषय पर रुचि दिखाई.

क्या छत्तीसगढ में भी इस विषय पर एक व्यापक और गहन अध्ययन करा कर इस तर्क को विश्राम दिया जाएगा कि छत्तीसगढ़ में आख़िर चार किसान रोज़ आत्महत्या क्यों कर रहे हैं?

शुभ्रांशु चौधरी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सरकारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है

छत्तीसगढ़ को लूट रही है सरकार और कंपनियां

रमन सिंह : अपने मुंह मियां मिट्ठू

छत्तीसगढ़ में डॉ रमन सिंह की सरकार के पास इन दिनों नक्सलवाद के नाश और विकास का नारा है. इन्हीं नारों की बदौलत वह सत्ता में दोबारा वापसी चाहती है. लेकिन जानने वाले जानते हैं कि राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण के इस दौर में चुनाव जीतना लोकप्रियता का सबूत नहीं माना जा सकता.

सच तो ये है कि फिलहाल धान का कटोरा खाली है. कोई 35 तहसीलें सूखे की बेरहम मार की चपेट में हैं. काम की तलाश में पलायन छत्तीसगढ़ के लिए कोई नई बात नहीं. लेकिन इस बार राज्य छोड़कर जाने वालों की कतार लंबी है. कई गांव तो दो तिहाई लोगों से खाली हो चुके हैं. चौतरफा भगदड़ है, मुफलिसी और भुखमरी की बाढ़ है, क़दम-क़दम पर भ्रष्टाचार है. प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के लिए कंपनियों को हरी झंडी दिखाने और उनका रास्ता साफ करने की सरकार की ख़तरनाक़ इच्छाशक्ति सबके सामने उजागर है. कुल तमाशा यह कि मछलियां बूंद-बूंद को तरस रही हैं और मगरमच्छ भरा समुंदर गटक रहे हैं.

काम की तलाश में पलायन छत्तीसगढ़ के लिए कोई नई बात नहीं. लेकिन इस बार राज्य छोड़कर जाने वालों की कतार लंबी है. कई गांव तो दो तिहाई लोगों से खाली हो चुके हैं. चौतरफा भगदड़ है, मुफलिसी और भुखमरी की बाढ़ है, क़दम-क़दम पर भ्रष्टाचार है. प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के लिए कंपनियों को हरी झंडी दिखाने और उनका रास्ता साफ करने की सरकार की ख़तरनाक़ इच्छाशक्ति सबके सामने उजागर है. कुल तमाशा यह कि मछलियां बूंद-बूंद को तरस रही हैं और मगरमच्छ भरा समुंदर गटक रहे हैं.

नतीजा सामने है. कांपट्रोलर एंड आडिटर जनरल (कैग) की ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक विभिन्न कंपनियों को अवांछित लाभ पहुंचाने की कीमत इस राज्य को पिछले वित्तीय वर्ष में एक अरब पचासी करोड़ रुपए की राजस्व हानि से चुकानी पड़ी है. कंपनियों को औने-पौने भाव ज़मीने दी गयीं और सस्ती दरों पर पानी की आपूर्ति की गई. दूसरी तरफ इन कंपनियों ने स्थानीय बाशिंदों को रोज़गार देने का अपना वायदा भी पूरा नहीं किया. भारी दबाव में राज्य सरकार स्वीकार कर चुकी है कि वेदांता नियंत्रित बाल्को समेत 37 कंपनियां नियम-कायदों को ताक पर रख कर औद्योगिक प्रदूषण फैला रही हैं.

यह मुट्ठी भर लोगों के लिए अच्छी ख़बर है कि सरगुजा, बस्तर, रायगढ़ और राजनांदगांव ज़िले में कोयले के बड़े भंडार का पता चला है. लेकिन इन इलाकों के लोगों के लिए यह उतनी ही बुरी ख़बर है. इसलिए कि कंपनियां कोयले की लूट के लिए आएंगी और उनकी ज़मीनें छीनी जाएंगी. पर्यावरण को भारी नुकसान पहुंचेगा और उसके कारण स्वास्थ्य संबंधी नई समस्याएं पैदा होंगी. आजीविका के परंपरागत साधनों का सफाया होगा और उन्हें विस्थापन की त्रासदी से गुजरना होगा. यह विकास का विनाशकारी चेहरा है.

सरकारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है... इसलिए कि बदहाली को छुपा कर खुशहाली की तस्वीर बनाने में राज्य सरकार को महारत हासिल है. इसे आंकड़ों की बाज़ीगरी का कमाल कहें कि नरेगा को लागू करने में उल्लेखनीय सफलता के लिए राज्य सरकार केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय का पुरस्कार झटक चुकी है. लेकिन कैग की रिपोर्ट के मुताबिक पिछले वित्तीय वर्ष 2007-08 में सरकार प्रति परिवार औसतन केवल 35 दिन का काम उपलब्ध करा सकी, जबकि 2006-08 का कुल औसत 41 दिन का है. नरेगा में जॉब कार्डधारी हरेक ग्रामीण परिवार को साल में सौ दिन काम पाने की कानूनी गारंटी है. यह अलग सवाल है कि किसी छोटे परिवार के लिए भी केवल सौ दिन का काम कितना पर्याप्त है?

काम मांगे जाने के 15 दिनों के भीतर काम उपलब्ध कराने और काम ख़त्म हो जाने के बाद इतने ही दिन में मज़दूरी का भुगतान किए जाने का प्रावधान है. लेकिन ज़्यादातर जगहों पर यह प्रावधान ज़मीन पर नहीं उतर सका. मज़दूरी के भुगतान में 326 दिनों तक की देरी हुई. अनियमितताओं और गड़बड़ियों के तमाम मामले सामने आए. मसलन, ग्रामसभा या ग्राम पंचायत की सिफारिश के बग़ैर 22 तरह के सार्वजनिक काम बाहरी एजेंसियों को सौंप दिये गए. यह तो नरेगा के मक़सद को ठेंगा दिखाना है.

डॉ रमन सिंह उर्फ 'चाउरवाले बाबा' का नारा है कि उनके राज में अब कोई भूखा न सोएगा. इस गरज से ग़रीब परिवारों को दो रुपए किलो चावल दिए जाने की सरकारी योजना है. हालांकि इस पर काफी हो-हल्ला भी मच चुका है कि ग़रीबों के नाम का चावल जितना ग़रीबों तक पहुंचता है, उससे कहीं ज़्यादा काला बाज़ार में पहुंच जाता है. और वैसे, यह योजना आख़िरकार ग़रीबों को काहिल बनाने और उन्हें ग़रीबी और अभाव से न उबरने देने की योजना है. जीने का मतलब जैसे-तैसे केवल पेट का भर जाना नहीं है. असल सवाल तो पोषण का है. उससे आगे शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतों का है, आत्मनिर्भरता और बेहतरी का है, बराबरी और इंसाफ़ का है. शर्म उनको मगर नहीं आती?

खेती का हाल कतई अच्छा नहीं है. सिंचाई के लिए पानी की भारी किल्लत है. जंगलों की आंख मूंद कटाई बरसात को अपनी मर्जी का मालिक बना रही है और खेती घाटे का सौदा बनती जा रही है. किसान होने का मतलब कर्ज़दार होना है. धान की देसी किस्मों का लगभग सफाया हो गया है. लेकिन हां, नगदी फसल के नाम पर रतनजोत की खेती का डंका ज़रूर है. मतलब कि इस तथ्य की आपराधिक अनदेखी है कि रतनजोत इंसानों, खास कर बच्चों और पशुओं की ज़िंदगी के लिए बड़ा खतरा है. लेकिन विवादास्पद बायो-डीजल के लिए रतनजोत चाहिए. किसी भी कीमत पर. पर इन सवालों से चिकने घड़े पर क्या फर्क पड़ता है?

फर्क पड़ता है, अगर मामला कंपनियों के हित का है. तब तो लोकतंत्र का नाटक भी किया जा सकता है. आरकेएम पावर जनरेशन कंपनी का इरादा जांजगीर चंपा ज़िले में बिजली संयंत्र स्थापित करने का था. इसके लिए जन सुनवाई का आयोजन किया गया. हजारों लोग जमा हो गए और उन्होंने कंपनी के इरादे पर पानी फेर देनेवाला विरोध दर्ज किया. इस विरोध के तमाम कारण गिनाए गए कि संयंत्र के लगने से किस तरह किसानों पर उल्टा असर पड़ेगा, प्रदूषण का संकट खड़ा होगा, पीने के पानी की व्यवस्था चौपट होगी वग़ैरह-वग़ैरह. लेकिन बाद में पता चला कि संयत्र के लिए भूमि पूजन किया जा चुका है. इसी तरह रायगढ़ ज़िले में जिंदल समूह की एक और कोयला खनन की योजना को लेकर जन सुनवाई का आयोजन हुआ. स्थानीय निवासियों ने योजना का पुरज़ोर विरोध किया और उसे अपने भविष्य के लिए घातक माना. इसके बदले उन्हें पुलिस की लाठियां मिलीं. इससे भी काम न चले, तो गोली और जेल है. छत्तीसगढ़ प्राकृतिक संसाधनों के लिहाज से समृद्ध राज्य है और इन संसाधनों पर कंपनियों की गिद्ध निगाह है. स्थानीय बाशिंदे रोड़ा हैं. प्रसंगवश, 4 जून 2005 को टाटा ने छत्तीसगढ़ में स्टील संयत्र की स्थापना के लिए राज्य सरकार से करार किया और उसके ठीक दूसरे दिन सलवा जुडुम का जन्म हो गया. सलवा जुडुम माने शांति बनानेवाला दल। यहां शांति का मतलब केवल मरघटी सन्नाटे से है. इसके लिए प्रतिरोध की आवाज़ों को कुचलना लाजिमी है. पुलिस और अर्धसैनिक बलों के अलावा सलवा जुडुम की भी यही भूमिका है. नक्सलवाद तो बस अच्छा बहाना है, असल मक़सद तो कंपनियों के साथ दोस्ती निभाना है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हमारे समाज और राजनीति का नंगा सच

एक अन्य अनुमान के मुताबिक दिल्ली की सत्तर फीसदी जनसंख्या या तो ऐसी ही बस्तियों में रहती है या बेघर है - मतलब आंकड़ों के हिसाब से एक करोड़ लोग. एक करोड़ लोगों का मतलब कम से कम 40 लाख वोटर, चुनाव आते ही नेताओं की धमक इन बस्तियों में सुनाई देने लगती है. देश के सजग राजनेता इस बात को भलीभांति जानते हैं कि शहर का धनाढ्य मध्यम वर्ग वोट डालने पोलिंग बूथ पर नहीं जाता. वोट डालने वाले समाज के यही ग़रीब हैं, जिनके लिए आम चुनाव ही अपने जीवन और जीविका को बेहतर बनाने का एकमात्र जरिया है.

प्रयाग अकबर

सुंदर नगरी के टूटे-फूटे सार्वजनिक शौचालय के सामने एक क्रिकेट मैच खेला जा रहा है. आठ से बारह साल के बीच की उम्र के चार लड़के, अपने हाथों को घुटने पर रख कर झुके हुए हैं और एक दूसरा लड़का थोड़ी दूर दौड़ कर लाल रंग की गेंद फेंकता है. बैटिंग कर रहा लड़का लकड़ी के फट्टे घुमाता है, जिससे टकरा कर गेंद 20 फीट दूर एक गटर में चली जाती है. गंदे पानी से भरा यह गटर ऐसा लग रहा है, जैसे गंदे तेल का तालाब हो. बैटिंग कर रहा लड़का अपना रन पूरा करने के लिए आधी दौड़ पूरी कर चुका है, उसी बीच फील्डिंग कर रहा एक लड़का गटर में हाथ डाल कर गेंद बाहर निकालता है और दो-तीन बार ज़मीन पर पटक कर गेंदबाज़ की ओर उछाल देता है, और फिर अपनी कमीज से रगड़ कर हाथ साफ करता है. वहीं गेंदबाज़ अपनी उंगलियों को जीभ पर रगड़ते हुए गेंद चमकाने की कोशिश करता है, ठीक उसी तरह जैसे अंतर्राष्ट्रीय मैच के दौरान गेंदबाज़ करते हैं. सुंदर नगरी में रहते हुए स्वास्थ्य के बारे में सोचना बेमानी है.

तकनीकी तौर पर सुंदर नगरी स्लम नहीं है. सरकारी दस्तावेजों के मुताबिक वह दिल्ली की एक पुनर्वास कॉलोनी है, जहां वे परिवार रहते हैं, जिन्हें सत्तर के दशक में दिल्ली के सौंदर्यीकरण के नाम पर झुग्गियों से हटा कर बसाया गया था. दिल्ली के उत्तर-पूर्वी छोर पर शाहदरा के पास बसे सुंदर नगरी में कितने लोग रहते हैं, इसका कोई हिसाब-किताब नहीं है, लेकिन एक अनुमान के तहत यहां तक़रीबन एक लाख लोग रहते हैं. पूरे देश में आप ऐसी बस्तियां देख सकते हैं, जहां शहरी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा पुनर्वास कॉलोनी, अनधिकृत कॉलोनी और स्लम में रहता है. एक अन्य अनुमान के मुताबिक दिल्ली की सत्तर फीसदी जनसंख्या या तो ऐसी ही बस्तियों में रहती है या बेघर है – मतलब आंकड़ों के हिसाब से एक करोड़ लोग.एक करोड़ लोगों का मतलब कम से कम 40 लाख वोटर, यह कहना है हजार्ड सेंटर के दुनु रॉय का. चुनाव आते ही नेताओं की धमक इन बस्तियों में सुनाई देने लगती है. देश के सजग राजनेता इस बात को भलीभांति जानते हैं कि शहर का धनाढ्य मध्यम वर्ग वोट डालने पोलिंग बूथ पर नहीं जाता. वोट डालने वाले समाज के यही ग़रीब हैं, जिनके लिए आम चुनाव ही अपने जीवन और जीविका को बेहतर बनाने का एकमात्र जरिया है. चुनाव आते ही देश के नेता एक सधी हुई रणनीति के तहत इन वोटरों को लुभाने में लग जाते हैं. इसमें सबसे सधा हुआ तरीक़ा इन ग़रीबों को सस्ती शराब परोसना है. साइकिल रिक्शा चालक लखन का कहना है, चुनाव के कुछ सप्ताह पहले से ही नेताओं के भेजे ट्रक इन इलाक़ों में हर रात आते हैं. उनके कार्यकर्ता प्रसाद की तरह शराब की थैलियां और बोतलें बांटते हैं. यहां चुनाव लड़ने वाला हर नेता यह काम करता है.

दुनु रॉय मानते हैं कि शराब परोसने की यह रणनीति वोटरों से ज़्यादा नेताओं की मनोदशा बताती है. नेता समझते हैं कि वो शराब बांट कर इनके वोट खरीद सकते हैं, लेकिन मैंने कभी स्लम में रहने वालों को इस आधार पर वोट देते नहीं देखा. वह नेताओं की शराब ज़रूर ले लेगा –हालांकि मैंने देखा है कि कई महिलाएं अपने पति को इन ट्रकों के पास नहीं जाने देतीं, लेकिन मतदाता वोट केवल उन नेताओं को देता है, जो उनसे वास्तविक मदद का वादा करता है. राजनीति की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वीपी सिंह के बाद कोई भी नेता ग़रीबों की मनोदशा नहीं समझ पाया है.

मध्यम वर्ग की सोच कई बार उलटी होती है. स्लम में रहने वालों के प्रति कई भ्रांतियां हैं. इस स्टोरी पर शोध के दौरान संवाददाता को समाज के संभ्रांत लोगों ने बताया कि स्लम में रहने वालों को उनके वोट के लिए पैसे दिए जाते हैं. उन्हें मुफ्त बिजली मुहैया कराई जाती है, मुफ्त पानी मिलता है, वगैरह-वगैरह. इसी आधार पर स्लम के लोगों को मध्यवर्गीय कोसते हैं. जबकि दिल्ली विद्युत बोर्ड की एक रिपोर्ट कहती है कि बिजली चोरी मध्यम वर्गीय घरों की अपेक्षा स्लम में कम होती है. उनका यह भी भ्रम है कि स्लम के लोगों को आसानी से एक साथ वोट डालने के लिए मजबूर किया जाता है और ऐसी स्थिति में वे नेताओं के मायाजाल में आसानी से फंस जाते हैं. वास्तविकता इसके ठीक उलट है. आमतौर पर स्लम में रहने वालों को वोट की राजनीतिक ताक़त की समझ होती है और कोवर्ट ने स्लम में जिनसे भी बात की, सभी ने इस बात से इंक़ार किया कि नेताओं ने उनके वोट ख़रीदने की कोशिश की. राजमती, एक मध्मय उम्र की महिला है. वह कपड़े धोने का काम करती है. वह समझाने के अंदाज़ में कहती हैं, 'नेता महज रैलियों में ले जाने के लिए पैसे देते हैं. वे वयस्क को सौ रुपए और बच्चों को पचास रुपए देते हैं. लेकिन जब सवाल वोट डालने का होता है, वे कुछ नहीं करते. हमारा वोट हमारा अधिकार है. हम राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर के नेताओं को न तो जानते हैं, न ही हमें उनकी फिक्र है. हमें ऐसे नेताओं की ज़रूरत है, जो हमारी तरह हों और जो हमारी ज़रूरतों से सरोकार रखते हों.' सुंदर नगरी के लोगों की मांग बहुत लंबी-चौड़ी नहीं है. साफ पानी, साफ शौचालय और सफाई के साथ-साथ जरूरी स्तर की स्वास्थ्य सुविधा उन्हें उपलब्ध हों. इला देवी, उम्र साठ साल और पेशे से बुनकर, कहती हैं, 'हमें सिर्फ उतना चाहिए, जितना सरकार ने वादा किया है. हमारे हिस्से में महिलाओं के लिए महज एक शौचालय है और वह भी जर्जर हालत में. गंदगी हमारे घुटनों तक पहुंच चुकी है.

मध्यम वर्ग की सोच कई बार उलटी होती है. स्लम में रहने वालों के प्रति कई भ्रांतियां हैं. इस स्टोरी पर शोध के दौरान संवाददाता को समाज के संभ्रांत लोगों ने बताया कि स्लम में रहने वालों को उनके वोट के लिए पैसे दिए जाते हैं. उन्हें मुफ्त बिजली मुहैया कराई जाती है, मुफ्त पानी मिलता है, वगैरह-वगैरह. इसी आधार पर स्लम के लोगों को मध्यवर्गीय कोसते हैं. जबकि दिल्ली विद्युत बोर्ड की एक रिपोर्ट कहती है कि बिजली चोरी मध्यम वर्गीय घरों की अपेक्षा स्लम में कम होती है. उनका यह भी भ्रम है कि स्लम के लोगों को आसानी से एक साथ वोट डालने के लिए मजबूर किया जाता है और ऐसी स्थिति में वे नेताओं के मायाजाल में आसानी से फंस जाते हैं. वास्तविकता इसके ठीक उलट है.

इस शौचालय का किसी हालत में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है. इसलिए हम पास की नाली का इस्तेमाल करने के लिए मजबूर हैं, लेकिन वहां अक्सर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ होती रहती है. पिछले सप्ताह ही यहां नाले में एक लाश बरामद हुई थी. हम मामले को लेकर अपने पार्षद संतोष कुमार, एमएलए वीर सिंह दीघन, यहां तक की सांसद संदीप दीक्षित के पास तक गए. सभी ने एक सुर में कहा कि वे इसमें कुछ नहीं कर सकते हैं, लेकिन इसमें कुछ तो होना ही चाहिए, क्योंकि हम इस तरह नहीं रह सकते.'

मुंबई के विश्वविख्यात स्लम धारावी के रहने वाले डैनियल स्वामी मानते हैं कि स्लम की सामाजिक संरचना इस तरह की होती है कि नेता डरा-धमका कर वोट नहीं ले सकता. स्वामी कहते हैं कि यह मुंबई है, बिहार नहीं. हमारे स्लम में आप बंदूक की नोंक पर वोट नहीं ले सकते. यहां यह भी तय नहीं कि ज्यादा पैसे ख़र्च करने वाला प्रत्याशी ही जीतेगा. यहां रहने वाले अपने वोट का महत्व अच्छी तरह जानते हैं और उसी के मुताबिक मोल-भाव कर सकते हैं. दुनु रॉय समझाते हैं कि आज नेता और सरकार की बसाई गई इन पुनर्वास कॉलोनियों के लोगों के बीच रिश्ता थोड़ा-बहुत संरक्षक और संरक्षित का हो गया है. यह निर्भर करता है कि संरक्षक अपने पालितों के लिए बिजली और साफ पानी जैसी मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराता है या नहीं. स्लम आम कॉलोनियों से इसलिए भी अलग होता है, क्योंकि इसका विकास स्वतःस्फूर्त तौर पर बिना सरकार की दखलंदाज़ी के होता है और यहां रिश्ते आमतौर पर पारंपरिक और भौगोलिक आधार पर निर्धारित होते हैं. रॉय आगे इसकी व्याख्या करते हैं कि ऐसे स्लम का प्रधान वोटों पर थोड़ा बहुत विशेषाधिकार रखता है, क्योंकि यहां वोटिंग सामाजिक आधार पर होती है. इसके बावजूद मीडिया इस विशेषाधिकार को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है. मेरे मुताबिक समृद्ध मध्यम वर्ग का वोट बैंक इससे अहम होता है. ग़रीबों के लिए तो वोट उनकी राजनीतिक ताक़त प्रदर्शित करने का एक माध्यम है. ऐसा भी नहीं है कि वे बिल्कुल ही भोले हैं. वे वोट करते हैं, लेकिन शंकित होकर ही, यह जानते हुए कि जो भी वायदे किए जा रहे हैं, वे खोखले हैं और उनकी कोई अहमियत नहीं है. हालांकि सामाजिक आधार पर वोटिंग किए जाने की वजह से कई बार हिंसा की घटनाएं भी हो सकती हैं. मुंबई के एक स्लम के कमल सिद्दीकी कहते भी हैं कि अगर कोई उम्मीदवार घटिया हो, तो भी जो लोग कांग्रेस को वोट दे रहे हैं, वह उसी को देते रहेंगे. सारी पार्टियां ही घटिया हैं. चुनाव तो बदतरीन में से सबसे कम ख़राब का ही करना है.

यही सुंदर नगरी से लेकर धारावी तक का सच है. शायद हमारे समाज और राजनीति का भी नंगा सच यही है.

[COVERT]

feedback.chauthiduniya@gmail.com

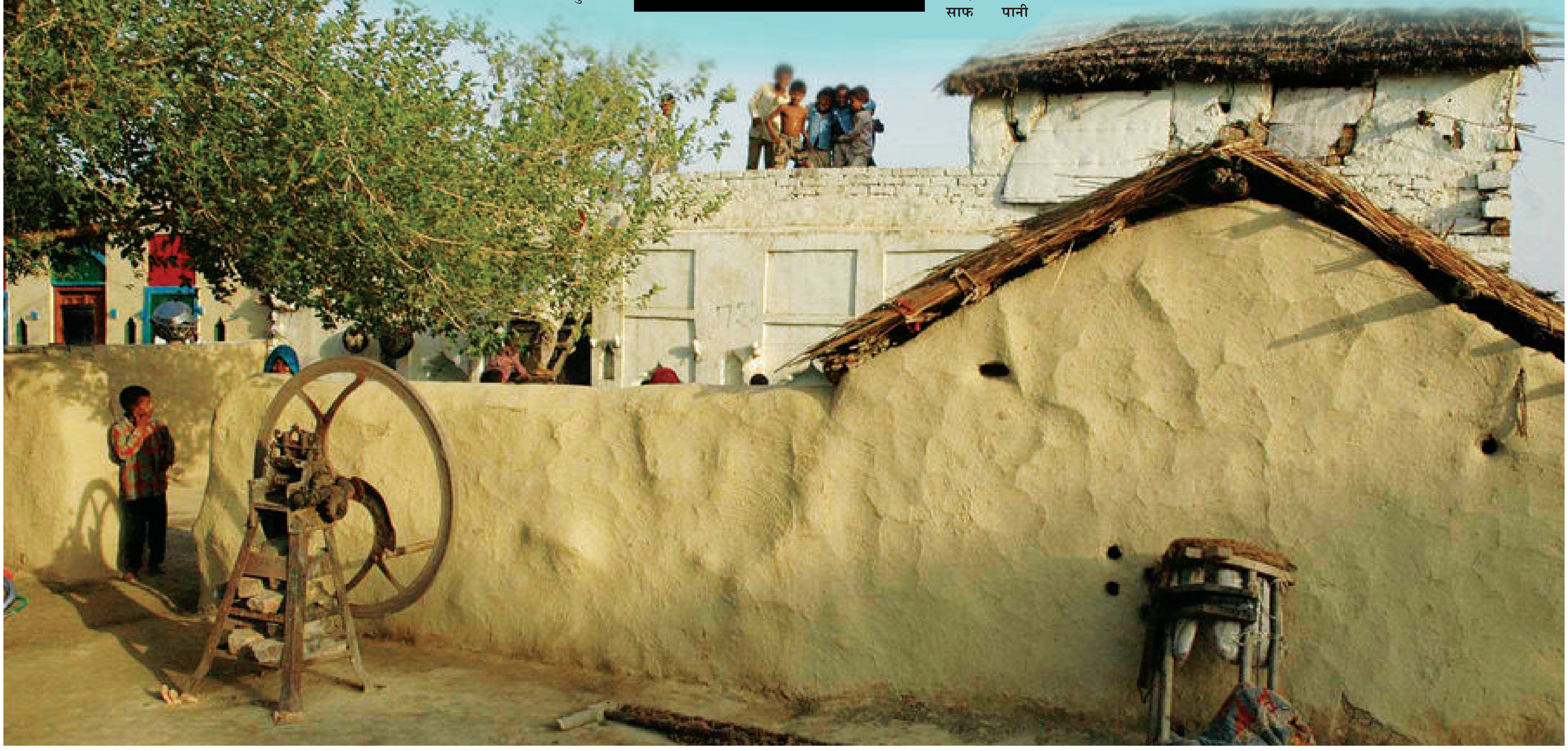

14 page 4/2/2009 1:55 AM Page 1

संसद पहुंच कर क्यों बेज़ुबान हो जाते हैं पत्रकार

सांसदों के निकम्मेपन, संसद में उनकी कम या न के बराबर उपस्थिति, उन पर बर्बाद होनेवाले जनता के पैसों पर हमारा मीडिया बुक्का फाड़ कर रोता है. सांसदों के नालायक होने का जिस तरह से स्यापा होता है, उसे देख कर किसी को भी यह लग सकता है कि अगर हमारे पत्रकारों को संसद में जाने का मौका मिल जाए, तो वह न जाने क्या कर डालेंगे. इस देश की तकदीर ही बदल डालेंगे और संसद का कायापलट कर देंगे. सच्चाई हालांकि कुछ और ही है. हमारी बिरादरी के कई पत्रकार बंधु फिलहाल संसद (कुल मिलाकर 17) के उच्च सदन में आराम फरमा रहे हैं. लेकिन उनका संसदीय प्रदर्शन शायद शर्म को भी शर्मसार कर दे. पत्रकारिता के जरिए संसद में पहुंचते ही इन्हें सब कुछ भूलने की आदत पड़ जाती है.

पावस नीर

मीडिया को कथित तौर पर लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है. मीडियाकर्मियों की तीखी नज़र जहां सबसे अधिक गड़ती है, वह है हमारी संसद में हंगामे और हो-हल्ला का नजारा. भारतीय मीडिया, चाहे वह प्रिंट की पत्रकारिता हो या टीवी की, संसद सदस्यों की खिंचाई करने के मामले में एकजुट नज़र आता है. संसद के शोर और सांसदों के बर्ताव से हो रहे नुकसान, वह आर्थिक हो या राजनीतिक, को सामने लाने में मीडिया बड़ा तत्पर दिखता है. ऐसे में जब इन पत्रकारों में से कोई संसद में पहुंचता है, तो उससे उम्मीद होती है कि वो संसद को लेकर अपनी पुरानी आलोचना की कसौटी को ध्यान में रख कर काम करे. जाहिर तौर पर अब उसे दो खंभों का काम करना होता है. चौथा खंभा तो वह था ही, सांसद होने के बाद उसकी ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है. लेकिन ऐसा हो नहीं पाता. पत्रकारिता की पृष्ठभूमि से संसद में आए लोगों पर एक नज़र डालें तो दिखाई देता है कि संसद पहुंचते ही इनका अब तक का सारा कहा, बोला और लिखा हुआ एक धोखा था, छल था, कपट था.

राज्यसभा में कई सांसद हैं, जो पत्रकारिता की पृष्ठभूमि से आए हैं या मनोनीत किए गए हैं. ऐसे सांसद अब भी हमारी संसद में हैं और हमेशा से आते रहे हैं, लेकिन इन सदस्यों के आंकड़ों पर नज़र डालें, तो साफ हो जाता है कि प्रदर्शन के नाम पर ये फिसड्डी ही रहे. पायनियर के पूर्व संपादक और मालिक चंदन मित्रा पत्रकार के तौर पर भले ही दिग्गजों में गिने जाते हैं, लेकिन राज्यसभा में उनका प्रदर्शन बेहद निराशाजनक रहा है. पिछले पांच सालों के उनके कामकाज पर बात की जाए, तो उन्होंने इस दौरान महज़ 12 सवाल पूछे. इनमें से बस दो सवाल ही तारांकित सवाल थे. वहीं बस एक बार ही उन्होंने विशेष ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखा. जाहिर है, चंदन मित्रा साहब को सियासी बिसात पर गोटियां बिछाने से फुर्सत मिले, तब तो वह संसद के कामकाज में शिरकत करें. हालांकि राजनीति में भी वह मिट्टी ही पलीद करते हैं. ताज़ा उदाहरण उड़ीसा का है, जहां उन्होंने भाजपा का खेल ही बिगाड़ दिया. चंदन मित्रा से भी बुरा हाल भाजपा के अरुण शौरी का है. एक ज़माने में चोटी के पत्रकार रहे अरुण शौरी के बारे में राज्यसभा वेबसाइट की मानें, तो उन्होंने आख़िरी बार 1998 में सवाल पूछा था. वह भी केवल दो बार और कोई विशेष ध्यानाकर्षण प्रस्ताव भी नहीं रखा. हालांकि अरुण शौरी इसके बाद केंद्र में मंत्री भी रह चुके हैं. लेकिन सांसद के तौर पर उनका लेखा-जोखा निराश ही करता है.भाजपा के ही बलबीर पुंज भी पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं. 2008 में वह राज्यसभा के लिए फिर से चुने गए. वह 2002-2007 के दौरान भी राज्यसभा सदस्य रह चुके थे. उस दौरान उन्होंने बस तीन विशेष ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखे. 2008 में सदस्य चुने जाने के बाद सांसद कोटे से मिली राशि का कोई इस्तेमाल उन्होंने अब तक नहीं किया है.

अरुण शौरी | बलवीर पुंज | चंदन मित्रा

निकम्मेपन में हमारे पत्रकार बंधु दलगत भेदभाव से ऊपर हैं. पत्रकारिता से राजनीति में आए बड़े नामों में कांग्रेस के राजीव शुक्ला भी हैं. राजीव शुक्ला ने 2002 से अब तक 12 विशेष प्रस्ताव रखे हैं. जितनी बार वह रोज़ाना टीवी पर दिख जाते हैं, उसके मुकाबले यह संख्या कैसी है, आप खुद सोच सकते हैं. हां, वैसे माननीय राजीव जी आईपीएल मैचों के दौरान सूट-बूट से लैस अधिकतर वेन्यू पर नज़र आ जाते हैं. ग़लती वैसे राजीव जी की क्या कही जाए... अब नवयौवना चीयर लीडरानियों को छोड़ कर कौन बूढ़े लीडरों के बगल में जाकर बैठे. (कौन जाए ज़ौक अब दिल्ली की गलियां छोड़ कर...)

इन सभी राज्यसभा सदस्यों में किसी ने कोई बड़ा मेंबर बिल भी पेश नहीं किया. इनके अलावा पत्रकारिता के कई बड़े नाम सीधे राजनीतिक तौर पर या मनोनीत होकर संसद में आते रहे हैं. लेकिन इस समय कोई ऐसा नाम नहीं दिखता, जो उन मानकों का उदाहरण प्रस्तुत कर सके, जिनकी मांग मीडिया करता रहा है. पिछले आठ सालों में 25 बार राज्यसभा में बड़ी बहस हुई, याद नहीं आता कि ऐसी किसी बहस के दौरान इन सदस्यों ने कोई बड़ा मुद्दा उठाया हो, या किसी सदस्य ने कोई यादगार भाषण दिया हो. समझ में नहीं आता कि मीडिया में रह कर संसद के गिरते स्तर का रोना रोने वाले ये पत्रकार आख़िरकार वहां पहुंच कर अपनी धार कहां भूल जाते हैं. क्या मीडिया में रहने पर की गई उनकी टिप्पणियां महज़ एक दिखावा थीं? मीडिया को सबसे पहले अपने इन धुरंधरों की नकेल कसनी होगी.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

हिंदू होने का धर्म

पिछले अंक में हमने इस विषय पर चर्चा की थी कि हिंदू धर्म (सनातन धर्म) से जुड़ी आम गलतफहमियां किस तरह की हैं. उसी क्रम में हमने वैदिक काल तक सनातन धर्म के विकास पर चर्चा की थी. अब हम वैदिक काल से आगे सनातन धर्म के उद्भव और विकास पर चर्चा करेंगे.

हम पहले भी कह चुके हैं कि सनातन धर्म का मतलब ही वैयक्तिकता से है. कभी भी इसे आधुनिक धर्मों (रिलीजन) की तरह संस्थागत बनाने की कोशिश नहीं की गई, ताकि यह किसी एक मसीह, किताब या रास्ते पर निर्भर हो जाए. यही वजह है कि वैदिक काल से लेकर आज तक सनातन धर्म में जैसे ही कोई वाद या सिद्धांत आया, वैसे ही उसकी काट या प्रतिवाद भी तैयार हो गया. वैदिक काल में इंसान प्रकृति के रहस्यों से अपरिचित था. कमज़ोर था तो डरता था. इसी अपरिचय, डर या आदर ने कई देवी-देवता बनाए. पानी से भय हुआ तो वरुण, आग से संभ्रम था, तो अग्नि, प्रकृति से अपरिचय था, तो इंद्र वगैरह. इसी के साथ शुरू हुआ कर्मकांड का सिलसिला. यज्ञ, सोमपान और न जाने क्या-क्या और कितनी तरह की पूजा-अर्चनाएं. यहीं सनातन धर्म ने फिर करवट बदली.

वेदों को जिस तरह से रूढ़ किया जा रहा था, कर्मकांड का जाल फैलाया जा रहा था, और धर्म को जकड़ा जा रहा था, प्रति-आंदोलन तो खड़ा होना ही था. वैदिक युग का प्रति-आंदोलन खड़ा हुआ, उपनिषदों के युग में. वेदांत की घोषणा के साथ ही. सनातन धर्म के चिंतकों और विचारकों ने वेदों के अंत की घोषणा कर रूढ़िवादिता और ठहराव के अंत की भी घोषणा की. उपनिषद दो शब्दों के मेल से बना है - उप और निषद. उप माने निकट और निषद का अर्थ बैठना. कुल मिलाकर उपनिषद का अर्थ हुआ - गुरु के निकट बैठकर ज्ञान प्राप्त करना.

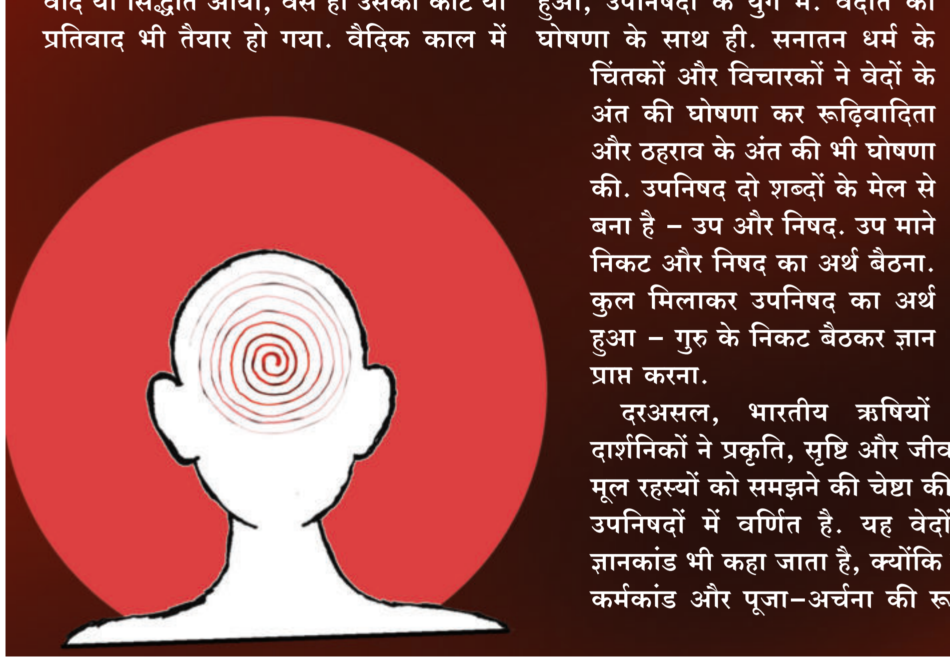

दरअसल, भारतीय ऋषियों और दार्शनिकों ने प्रकृति, सृष्टि और जीवन के मूल रहस्यों को समझने की चेष्टा की, जो उपनिषदों में वर्णित है. यह वेदों का ज्ञानकांड भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें कर्मकांड और पूजा-अर्चना की रूढ़ियों की जगह परम तत्व या अमर्त्य ब्राह्मण पर चर्चा की गई है. यहां ब्राह्मण शब्द से किसी वर्ण या जाति का अर्थ लगाना भी भूल ही होगी. तो फिर, ब्राह्मण है क्या. यह शब्द बृह धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है, बढ़ना. तो ब्राह्मण का अर्थ हुआ, वह जो लगातार बढ़े. जिसका कभी अंत न हो. यानी यूनिवर्स या ब्रह्मांड. इसी से जुड़ा है ब्राह्मण, मतलब वह परम आत्म, जिसका कभी अंत न हो.

वेदों को जिस तरह से रूढ़ किया जा रहा था, कर्मकांड का जाल फैलाया जा रहा था, और धर्म को जकड़ा जा रहा था, प्रति-आंदोलन तो खड़ा होना ही था. वैदिक युग का प्रति-आंदोलन खड़ा हुआ, उपनिषदों के युग में. वेदांत की घोषणा के साथ ही. सनातन धर्म के चिंतकों और विचारकों ने वेदों के अंत की घोषणा कर रूढ़िवादिता और ठहराव के अंत की भी घोषणा की.

उपनिषदों ने साकार ब्रह्म की जगह निराकार की स्थापना की. व्यक्ति की आत्मा को मुक्त किया. यह दरअसल वेदों की जड़ता से मुक्ति की एक प्रक्रिया है. वेदों के अंत की घोषणा के साथ ही उपनिषद अज्ञान के अंत की भी घोषणा करते हैं. शद का एक अर्थ नष्ट करना भी होता है, मतलब अज्ञान का अंत कर उपनिषद हमें ब्राह्मण को पाने लायक बनाते हैं.

उपनिषदों की शिक्षा मूल तौर पर दो विचारों पर केंद्रित है. पहला तो यह कि अंतिम मुक्ति केवल अज्ञान के नाश से ही मिल सकती है. इसके साथ ही, अंतिम सत्य या ब्राह्मण को जाने बिना भी मुक्ति नहीं मिल सकती है. मोक्ष या मुक्ति को विवेक, वैराग्य आदि के जरिए पा सकते हैं. उपनिषदों में बताया गया है कि अंतिम तौर पर सारे जीव, चर-अचर एक ही हैं. आत्म और ब्रह्म एक हैं. जो वस्तु किसी जीव में है, वही किसी दूसरे में और यही अंतिम सत्य है. कहने का मतलब यह कि उपनिषद पूर्ण एकत्व की बात करते हैं, कहीं किसी भेद को नहीं देखते - तत्वमसि.

उपनिषदों की शुरुआत ही खुद यानी व्यक्ति की तलाश से होती है. उपनिषद का घोषवाक्य है - को:हं यानी कौन हूं मैं. फिर उसी का जवाब देते हुए ऋषि कहते हैं, तत्वमसि यानी जो तुझमें है, वही सर्वत्र है. जो पुरुष (व्यक्ति) है, वही ब्रह्म (परमतत्व) यानी अंतिम सत्य है. उपनिषदों को वेदांत सही ही कहते हैं, क्योंकि यहां से औपचारिक तौर पर धर्म खत्म हो जाता है. धर्म के दर्शन पर उपनिषदों में अधिक ज़ोर दिया गया है. यह दर्शनशास्त्र की गुत्थियों में पूरी तरह से उलझता-भटकता है, इसीलिए इसको हरेक व्यक्ति समझ भी नहीं सकता. शायद इसी वजह से इनका एक अर्थ गुप्त ज्ञान भी है.

उपनिषदों का लगातार विकास और भाष्य होता रहा है. हालांकि कुल मिलाकर यह वेदों की टीका-टिप्पणी (वेदांत) हैं, इसलिए चार वेदों - ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद - पर उपनिषदों की न जाने कितनी शाखाएं-प्रशाखाएं हैं. उपनिषदों की कुल संख्या तो 1,180 तक पहुंच सकती है, यहां तक कि मुगल काल में एक अल्लोपनिषद भी लिखा गया. लेकिन कुल मिलाकर 108 उपनिषदों को महत्वपूर्ण माना गया है. इनमें बृहदारण्यक, छांदोग्य, ऐतरेय, ईश, मांडूक्य, प्रश्न और मुंडक इत्यादि उपनिषद प्रमुख माने गए हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सीबीआई फेल

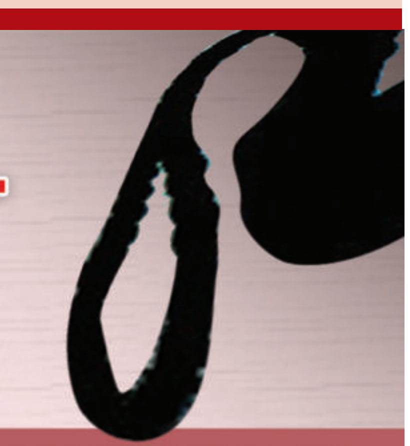

क्या कभी सज़ा पाएंगे आरुषि के कातिल?

नोएडा का आरुषि हत्याकांड एक ऐसी दिल दहला देने वाली वारदात थी, जिसने पूरे देश में सनसनी फैला दी थी. इसका मुकम्मल खुलासा आज तक नहीं हो पाया. आरोपी हाथ आए ज़रूर, पर जी-तोड़ कोशिश और गहन तफ्तीश के बावजूद सीबीआई को वे सबूत हासिल न हो सके, जो मुलजिमों को सज़ा दिलवा पाते. बावजूद इसके कि गुनहगार सामने हैं, हत्या का मकसद पता है और उसका कबूलनामा भी सीबीआई के पास मौजूद है.

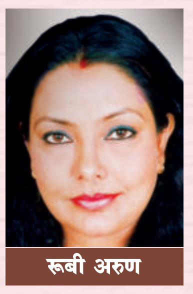

रूबी अरुण

“मैं ने सबको नचा कर रख दिया. अपनी बेइज़्ज़ती का बदला ले लिया मैंने. डॉ राजेश तलवार की बेटी का खून तो मैंने किया और उसके इल्ज़ाम में बाप को जेल भिजवा दिया. ऐसा कोई सबूत भी नहीं छोड़ा मैंने कि आप मुझे गुनहगार साबित कर सकें. कितनी भी कोशिश कर ले सीबीआई. मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती.”

एक अनपढ़ आदमी सीबीआई को नचा गया. सीबीआई जानती है कि डॉ. राजेश तलवार और डॉ. नूपुर तलवार की बेटी आरुषि और उनके नौकर हेमराज की हत्या उनके नौकर कृष्णा ने ही की है. इस गुनाह में उसका साथ दिया है डॉ. राजेश तलवार की दोस्त डॉ. अनिता दुर्रानी के कंपाउंडर राजकुमार ने. नार्को टेस्ट में कृष्णा और राजकुमार ने आरुषि की हत्या की बात कबूल की है. पर उनका ये कबूलनामा अदालत के लिए कोई मायने नहीं रखता, लिहाजा सीबीआई के लिए इनके बयान का कोई मोल नहीं है. बहरहाल, आज भी यह सवाल सबके दिमाग में है कि आखिर इस वारदात का सच क्या है.

वारदात के पीछे की जो असली कहानी है, वह यह कि डॉ. तलवार के नौकर हेमराज ने कृष्णा से कुछ रुपए उधार लिए थे. वह ये रुपए लौटा नहीं पा रहा था. इसी दरम्यान डॉ. तलवार ने कृष्णा को उसकी लापरवाही के लिए सरेआम फटकारा. स्वभाव से बेहद उद्दंड और आक्रामक कृष्णा इस बात पर ताव खा गया. उसने तय कर लिया कि अब उसे डॉ. तलवार के पास नौकरी नहीं करनी है. कृष्णा बेहद महत्वाकांक्षी भी था. ढेर सारा पैसा कमाने की ख्वाहिश भी थी. उसके ज़ेहन में आया कि क्यों नहीं वह अरब या मलेशिया चला जाए. कृष्णा इसकी फिराक में लग गया. विदेश जाने के लिए बहुत पैसों की ज़रूरत थी. कृष्णा, हेमराज से अपने पैसों की मांग करने लगा. हेमराज ने तुरंत पैसे लौटाने में लाचारी जताई. तब कृष्णा ने उसे धमकाना शुरू कर दिया. तुरंत पैसे न लौटाने की हालत में उसे जान से मारने की धमकी भी देने लगा. हेमराज, कृष्णा के मिज़ाज से वाक़िफ़ था. वह डर गया. हेमराज के डरने की एक वजह और भी थी. वह यह कि हेमराज नेपाल के जिस कस्बे से आता है, वहां पैसे उधार लेना हराम माना जाता है. हेमराज को लगा कि अगर यह बात उसके गांव के लोगों को पता चल गई, तो उसके परिवार के सदस्यों का हुक्का-पानी बिरादरी वाले बंद कर देंगे. हेमराज, कृष्णा के अलावा अगर किसी को जानता था, तो वह था डॉ अनिता दुर्रानी का नौकर राजकुमार. हेमराज ने अपनी परेशानी राजकुमार को बताई. राजकुमार की सलाह पर यह तय हुआ कि इस मसले पर एक बार इकट्ठे बैठ कर बात कर ली जाए और कृष्णा को समझाने की कोशिश की जाए. तय यह हुआ कि डॉ. तलवार के घर पर ही यह बातचीत की जाए, लेकिन रात के बारह बजे के बाद. वजह यह कि तब तक डॉ. तलवार का परिवार सो चुका होगा और तब इत्मीनान से बातचीत की जा सकेगी. कृष्णा अपनी बड़ी बहन के साथ उसी इमारत में रहता था, जहां डॉ. तलवार रहते थे. योजना के मुताबिक 15 मई 2008 की रात कृष्णा नोएडा के सेक्टर 20 के जलवायु विहार स्थित फ्लैट एल-32 पर पहुंचा. हेमराज के कमरे में आने-जाने के लिए दो दरवाजे हैं.

आधी रात होते ही फ्लैट के बाहरी दरवाजे से कृष्णा हेमराज के कमरे में पहुंच गया. उस वक्त वह नशे में था. उसने आते ही हेमराज के साथ गाली-गलौज़ शुरू कर दी. कृष्णा अपने साथ खुखरी लेकर आया था. राजकुमार अभी तक नहीं आया था. हेमराज को लगा कि कृष्णा नशे में कहीं उसे नुकसान न पहुंचा दे. इसी बीच कृष्णा ने हेमराज के कमरे में रखे फ्रिज़ को खोल कर शराब की बोतल निकाल ली और पीनी शुरू कर दी. कृष्णा ने हेमराज का मोबाइल उठा कर अपनी जेब में रख लिया. कृष्णा की हरक़तों से हेमराज बेहद घबरा गया. अंदर के एक कमरे में तलवार दंपति सो रहे थे, जबकि दूसरे में उनकी 14 साल की बेटी आरुषि सो रही थी. उसे लगा कि कृष्णा की हरकतों से कहीं डॉ. तलवार जग गए, तो उसकी नौकरी जा सकती है. हेमराज की समझ में नहीं आया कि वह किसे अपनी मदद के लिए बुलाए. फिर उसे विजय मंडल की याद आई. विजय मंडल डॉ. तलवार के पड़ोसी एयर कमांडर टंडन का नौकर था. वह ग्राउंड फ्लोर के गैराज में सोता था. हेमराज ने उसे बुलाने की सोची. वह नीचे उतरा. राजकुमार उसे सीढ़ियों पर ही मिल गया. हेमराज वापस उसके साथ अपने कमरे में आ गया. तब तक कृष्णा बुरी तरह नशे में धुत हो चुका था. राजकुमार भी कृष्णा के साथ मिल कर शराब पीने लगा. यह देख हेमराज की सांसें अटकने लगीं. वह दोबारा विजय मंडल को बुलाने भागा. विजय मंडल गहरी नींद में था, इसलिए दोनों को वापस आने में थोड़ी देर हो गई. जब हेमराज अपने कमरे में लौटा, तो उसने पाया कि कृष्णा और राजकुमार दोनों ही कमरे में नहीं हैं. उसने देखा कि उसके कमरे से डॉ. तलवार के ड्राइंग रूम में जाने वाला दरवाजा खुला हुआ है. हेमराज तेज़ी से अंदर गया. उसने जो कुछ भी देखा, उससे उसके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गयी. कृष्णा और राजकुमार दोनों ही डॉ. तलवार की बेटी आरुषि के कमरे में थे और उन्होंने आरुषि का मुंह दबा रखा था. दोनों शराब के नशे में अपना आपा खो बैठे थे. उनके इरादे भी ठीक नहीं थे. यह देख हेमराज के होश फाख्ता हो गए. उसने दोनों को आरुषि के कमरे से बाहर आने को कहा. पर कृष्णा और राजकुमार दोनों ने ही उसकी बात नहीं मानी. हेमराज ने उनसे झगड़ना शुरू कर दिया. हेमराज की तेज़ आवाज़ से घर में कहीं कोई जाग न जाए, यह सोच कृष्णा और राजकुमार घबरा गए. उसी हड़बड़ाहट में कृष्णा ने अपने साथ लाई खुखरी से आरुषि के सर पर वार कर दिया. आरुषि बेहोश हो गयी. हेमराज ने यह देख कृष्णा का गला पकड़ लिया. वह रोने लगा. उसे लगा आरुषि मर गयी. कृष्णा और राजकुमार ने हेमराज का मुंह दबाया और उसे घसीटते हुए छत पर ले गए. हेमराज ने कृष्णा के साथ मार-पीट करने की भी कोशिश की. पर वह अकेला और सामने दो-दो. इसके बावजूद हेमराज डटा रहा. कृष्णा और राजकुमार ने जब देखा कि हेमराज उनकी बात नहीं समझ रहा है, तो उनके इरादे और ख़तरनाक़ हो गए. उन्होंने सोचा कि अगर हेमराज ज़िंदा रह गया, तो उनके लिए मुसीबत बन सकता है. कृष्णा के पास खुखरी तो थी ही. उसने राजकुमार से कहा कि वो हेमराज का हाथ पकड़े. राजकुमार ने हेमराज को पीछे से पकड़ कर काबू में किया और कृष्णा ने उसका गला खुखरी से रेत दिया. छत पर रखे कूलर का ढक्कन खोल उन्होंने हेमराज की लाश को ढंक दिया. तय यह हुआ कि अगली रात मौका देख कर हेमराज की लाश को कहीं ले जाकर ठिकाने लगा देंगे. कृष्णा चूंकि उसी इमारत की छत पर बने एक कमरे में रहता था, लिहाज़ा वह अपने घर गया और वहां से एक ताला लाकर उसने डॉ तलवार के फ्लैट की तरफ खुलने वाले दरवाज़े पर लगा दिया. ताकि दिन में कोई छत पर न आ सके और हेमराज की हत्या का राज़ फाश न हो सके. जब वे दोनों यह कारगुज़ारी कर नीचे आ रहे थे, उनकी निगाह डॉ. तलवार के फ्लैट के खुले दरवाज़े पर पड़ी. तब उन्हें आरुषि की याद आयी. कृष्णा को लगा कि जब आरुषि होश में आएगी, तब वह सारी बातें डॉ तलवार को बता देगी. इसलिए आरुषि को खत्म कर देना उसने ज़रूरी समझा. वह उसके कमरे में वापस गया और बेहोश पड़ी आरुषि का गला भी खुखरी से रेत दिया. फिर खुखरी को उसने डाइनिंग टेबल पर रखे टिश्यू पेपर से पोंछा. खून से सने पेपर को उसने कमोड में फ्लश कर के बहा दिया. राजकुमार ने आरुषि का मोबाइल फोन अपनी जेब में डाल लिया. दोनों डॉ तलवार के फ्लैट से बाहर से निकले और बाहर से सांकल लगा दी. चूंकि तलवार दंपति के कमरे में एसी चल रहा था और दरवाज़ा बंद था, इसलिए कमरे के बाहर क्या हुआ, इस बात की उन्हें ख़बर तक नहीं लगी. इधर, कृष्णा और राजकुमार का नशा अभी तक उतरा नहीं था. हालांकि नशे में भी कृष्णा का शैतानी दिमाग़ साज़िश रच रहा था. उसने राजकुमार को समझाया कि अगर दोनों हत्याओं के बारे में लोगों को पता चल जाता है, तो अफवाह यही फैलानी है कि हेमराज ने आरुषि का क़त्ल किया और फरार हो गया. सभी इसी में उलझे रहेंगे और इसी बीच मौक़ा पाकर हेमराज की लाश ग़ायब कर दी जाएगी. फिर तो आरुषि के क़त्ल का राज़ हमेशा के लिए दफ़न हो जाएगा. कृष्णा डॉ तलवार के पड़ोसी की छत से होता हुआ अपने घर जाकर सो गया जबकि राजकुमार वापस अपने घर यानी डॉ अनिता दुर्रानी के यहां आ गया. इस पूरी वारदात के दरम्यान घटनास्थल पर मौजूद तीसरे शख्स विजय मंडल की घिग्घी बंधी रही.16 मई की सुबह आरुषि को मरा हुआ और हेमराज को फरार पाकर कोहराम मच गया. मौका पाकर कृष्णा ने हेमराज का मोबाइल और खुखरी जलवायु विहार की चारदीवारी के बाहर कूड़े वाली जगह पर जाकर दबा दिया. कृष्णा ने मोबाइल को तोड़ दिया था. उसने अपनी योजना के मुताबिक अफवाह फैलानी शुरू कर दी. यूपी पुलिस भी हेमराज को फरार घोषित कर उसकी तलाश में जुट गयी. इसी बीच हेमराज की भी लाश मिल गयी. अब कृष्णा ने दूसरे घिनौने पासे फेंकने शुरू कर दिए. उसने डॉ तलवार, उनकी पत्नी नुपूर तलवार और उनकी दोस्त डॉ अनिता दुर्रानी के बारे में ऊटपटांग बातें फैलानी शुरू कर दीं. यूपी पुलिस पूरी तरह उसके झांसे में आ चुकी थी. पुलिस ने कृष्णा की मनगढ़ंत कहानियों पर यक़ीन करते हुए तमाम नैतिकता ताक पर रख दी. रिश्तों की मर्यादा का भी ख्याल नहीं रखा. अपनी क़ाबिलियत दिखाने की फिराक़ में यूपी पुलिस ने डॉ तलवार के परिवार और रिश्तेदारों की इज्ज़त और चरित्र की धज्जियां उड़ा दीं. बेटी के क़त्ल के इल्ज़ाम में बाप को ही गिरफ्तार कर लिया. ऐसे-ऐसे इल्ज़ाम लगाए कि जिसने भी सुना, वह अवाक रह गया.

बहरहाल, मामला सीबीआई के पास आया. सीबीआई ने कृष्णा से पूछताछ शुरू की. सख्तजान कृष्णा ने पहले तो सीबीआई को बहकाने की पूरी कोशिश की, पर बाद में उसने सच उगलना शुरू किया. तमाम वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद सीबीआई के सामने यह बात बिल्कुल साफ हो गई कि क़ातिल कृष्णा ही है. राजकुमार और विजय मंडल ने भी अपने नार्को टेस्ट में साफ-साफ इस बात को कबूल किया है और कृष्णा की पूरी साज़िश का खुलासा किया है. इन सबके बयानों के आधार पर सीबीआई ने साक्ष्यों को तलाशने के लिए खूब मगज़मारी की. दर्जनों टीमें बनाई गईं. हफ़्तों छापेमारी चलती रही. घर, छत, पानी की टंकी, जलवायु विहार का पूरा इलाक़ा छान मारा गया. कोई नतीजा हासिल नहीं हुआ. न तो हत्या में इस्तेमाल हथियार बरामद हो सका, न ही आरुषि और हेमराज का मोबाइल फोन ही सीबीआई को मिला. कोई चश्मदीद भी उसे नहीं मिल सका. विजय मंडल ने एकबारगी सीबीआई का गवाह बनने की पेशकश मानी भी, लेकिन बाद में मुकर गया. अब चूंकि सीबीआई को ठोस सबूत मिले नहीं, लिहाज़ा वह ग़ाज़ियाबाद की सीबीआई की विशेष अदालत में अपना निष्कर्ष साबित नहीं कर सकी. वैज्ञानिक परीक्षणों के नतीजे भारतीय अदालत में मान्य हैं ही नहीं, इसी वजह से सीबीआई की सारी मेहनत जाया चली गई. सबूत के अभाव में तीनों आरोपियों को ज़मानत मिल गई. अब सीबीआई एक बार फिर लकीर की फकीर बनी हुई है. आरुषि हत्याकांड की जांच जारी रखने का दिखावा कर रही है. एक नई टीम बनाकर गाहे-बगाहे तफ्तीश का स्वांग रचा जाता है. वह इस कश्मकश में भी है कि इस मामले में चार्जशीट दाखिल करे भी या नहीं. एक बार जो भद उसकी पिटी है, उसके बाद वह यह क़दम उठाने की हिम्मत नहीं कर पा रही है. यह सवाल भी मौजूं है कि सीबीआई की छानबीन कभी अपने अंजाम तक पहुंचेगी भी या नहीं. यह संदेह इसलिए क्योंकि सबूत मिलने की कोई उम्मीद ही नहीं है. सीबीआई भी इस बात से वाक़िफ़ है. इसलिए अगर आरुषि हत्याकांड तफ्तीश के लिहाज़ से एक अनसुलझी पहेली बन कर रह जाए, तो हैरानी नहीं होनी चाहिए.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

चुस्त सीबीआई की सुस्त चाल

नोएडा के आरुषि हत्याकांड में एक मामूली से नौकर कृष्णा ने सीबीआई के तेज़-तर्रार अधिकारियों को अपनी चालाकी से न सिर्फ धूल चटा दी बल्कि खुल्लम-खुल्ला उन्हें ललकारा भी. अपने शातिरपने से उसने सीबीआई की काबिलियत और हुनर की धज्जियां उड़ा दी. तहकीकात के सारे तकनीक धरे के धरे रह गए. न तो नार्को टेस्ट और लाई डिटेक्टर, न ही ब्रेन-मैपिंग, कुछ भी काम नहीं आया. देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी की साख मिट्टी में मिल गई. तफ्तीश दर तफ्तीश चलती रही, पर सीबीआई के हाथ कुछ नहीं लगा. वह इस मामले में चार्जशीट तक दाखिल नहीं कर सकी. अपनी नाक बचाने के लिए सीबीआई अभी भी इस मामले की छानबीन करने का ढिंढोरा पीट रही है. जबकि इसमें हासिल करने के लिए अब कुछ बचा ही नहीं है. ले-देकर सीबीआई के पास नार्को टेस्ट की रिपोर्ट भर है, जिसमें तीनों आरोपियों ने अपना गुनाह क़बूल किया है. पर ये सबूत सीबीआई की कोई मदद नहीं कर सकते. क्योंकि अदालत नार्को टेस्ट को सच उगलवाने का हथकंडा भर मानती है. हालांकि यह टेस्ट अदालत के आदेश के बाद ही होता है, बावजूद इसके यह अदालत में मान्य नहीं है. साइकोलॉजिकल प्रोफाइल टेस्ट के नतीजों पर अदालत ज़रूर गौर करती है. पर आरुषि केस के आरोपी इतने सख़्तजान निकले कि उन्होंने टेस्ट में वही बताया, जो वे कहना चाहते थे. यानी कि सीबीआई जैसी एजेंसी को भी उन्होंने खूब चकमा दिया और तुर्रम खां बनने वाले अधिकारी गुमराह होते रहे. सिर्फ आरुषि कांड ही नहीं, तमाम ऐसे मामले हैं, जो सीबीआई के ठंडे बस्ते में दफ़न हैं. उन मामलों में सीबीआई चार्जशीट इसलिए दाखिल नहीं कर पा रही हैं, क्योंकि उसके पास सबूत नहीं हैं. अब सबूत क्यों नहीं हैं? तो इसका जवाब भी है सीबीआई के पास. सीबीआई के निदेशक अश्विनी कुमार फरमाते हैं कि सबूत नहीं मिलने की सूरत में सीबीआई उसे पैदा तो नहीं करेगी न. अब जाहिर है कि सबूत नहीं हैं, तो आरोपियों को सज़ा कैसे होगी. ऐसे में आरोपी तो बरी हो ही जाएंगे. तो फिर सीबीआई के अस्तित्व का मतलब क्या है? छह दशक पहले सीबीआई का गठन इसलिए किया गया था ताकि वह वैसे पेचीदा केसों की तहकीकात कर नतीजे पर पहुंचाए, जिसे सुलझाने में राज्यों की पुलिस नाकाम हो चुकी होती है. या फिर किसी दबाव में आकर पुलिस एकतरफा नतीजे पर पहुंच मामला रफ़ा-दफ़ा कर देती है. निष्पक्ष जांच और न्याय की आस में दुरूह मामले सीबीआई की झोली में आते हैं. पर यहां की लालफीताशाही में उनका दम निकल जाता है. यूपी की मुख्यमंत्री मायावती का केस हो या सपा प्रमुख मुलायम सिंह यादव पर आय से अधिक संपत्ति का मामला या फिर निठारी कांड. सभी का हश्र एक सा. हर मामले में सीबीआई नाकाम.

इज़राइल पर ईरान की छतरी तानेगा अमेरिका

अदावत को दोस्ती में बदलने की पहल

राहुल मिश्र

बराक ओबामा ने इज़राइल की सुरक्षा करने और अमेरिकी हितों को बचाने के लिए नया दांव फेंका है. ईरान के सामने दोस्ती का प्रस्ताव भेजा है. अमेरिका की नज़र में अब तक ईरान शैतान देशों की धुरी में शुमार रहा है. इराक, अफगानिस्तान और पाकिस्तान में अमेरिका की विदेश नीति पूरी तरह उलझ चुकी है. ऐसे में खाड़ी क्षेत्र में अपने हितों को बचाने के लिए अमेरिका के पास अब एक ही रास्ता बचा है – ईरान से दोस्ती.

सफ़ेद दुनिया का पहला काला राष्ट्रपति अपनी तीसरी दुनिया की गुत्थी सुलझाने में उलझा है. 20 मार्च को नवरोज़ के मौक़े पर दिए अपने बयान से ओबामा ने साफ़ संकेत दे दिया है कि वह ईरान को खाड़ी क्षेत्र में अहम भूमिका निभाने में अपना भागीदार बना सकता है, बशर्ते ईरान अमेरिकी हितों का ध्यान रखते हुए अमेरिकी दिशा–निर्देशों के मुताबिक आचरण करे. पूर्व राष्ट्रपति बुश की नीतियों का हवाला देते हुए बराक ने ईरान की जनता को संदेश दिया कि अगर ईरान सभ्य देशों की जमात में शामिल होना चाहता है, तो उसे अपनी मौजूदा सोच बदलनी होगी. इसके बाद ही बराक ईरान को लेकर अमेरिकी नीतियों में उलटफेर की सोच सकते हैं.

किसी विकल्प पर विचार कर सकते हैं. यह एक ऐसा विकल्प होगा, जो आपसी तालमेल और इज़्जत पर आधारित होगा. ऐसा विकल्प, जिसमें धमकियों की कोई जगह नहीं होगी. यह ऐसा विकल्प होगा, जो अमेरिका और ईरान दोनों के मुनाफ़े का होगा.

2008 के चुनावी भाषणों में बराक ओबामा ने इराक युद्ध के विरोध के साथ–साथ बुश की ईरान नीति की भी कड़ी आलोचना की. उनकी डेमोक्रेटिक पार्टी ईरान पर अमेरिकी हमले की मुख़ालफ़त कर रही थी. उससे पहले अमेरिका में ईरान की तरफ़ से गुटबंदी ज़ोर पकड़ रही थी और पूरी कोशिश की जा रही थी कि किसी तरह अमेरिकी हमले से बचा जा सके. आपसी संबंधों को सुधारा जा सके. हालांकि पूर्व राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश इन सभी कोशिशों को दरकिनार कर ईरान पर हमले की योजना को अंजाम देने में लगे थे.

सूत्रों के मुताबिक बुश की योजना ख़तरनाक थी. ईरान में कम से कम दो हज़ार मिसाइलें गिराई जानी थी. दोस्ती और अमन के सारे रास्ते बुश प्रशासन ने बंद कर दिए थे. ऐसे में ईरान को यह फ़ैसला करना पड़ा कि अब उसे युद्ध की तैयारी करनी पड़ेगी. लिहाज़ा उसने दो हज़ार के जवाब में महज दो सौ मिसाइलों के हमले का खाका तैयार किया. ईरान ने उन मिसाइलों का हमला उन ठिकानों पर करने की सोची, जहां अमेरिकी हित मौजूद था. ये दो सौ ठिकाने ईरान के अगल–बगल के उन देशों पर होने थे, जहां अमेरिकी धौंस और बेड़े मौजूद थे. इन देशों में सउदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और इज़रायल सहित कुछ और अमेरिकी मित्र देशों के ठिकाने शामिल थे.

ईरान की क्षमता चूंकि इससे अधिक की नहीं थी, इसलिए उसने बहुत सोच कर रणनीतिक योजना बनाई. उसकी सोच थी कि हम तो डूबे ही सनम, तुमको भी ले डूबेंगे. 200 ठिकानों पर पूरी क्षमता के साथ वार और अमेरिका व उसके पिट्ठू देश बर्बाद. इससे बढ़िया रणनीति और कुछ हो भी नहीं सकती थी. अमेरिकी खुफ़िया एजेंसियों को इसकी भनक लगी, तो पेंटागन में हड़कंप मच गया. ईरानी योजना ने अमेरिकी योजना की हवा निकाल दी. बुश को मन–मसोस कर ईरान पर हमले की योजना रद्द करनी पड़ी.

बराक ओबामा

आयतुल्ला खुमैनी

महमूद अहमदीनेजाद

आज ओबामा की पहल पर ईरान खुश है. ईरानी हुक्मरानों में भी ओबामा की पहल से उम्मीद जगी है. सर्वोच्च नेता अयातुल्ला खुमैनी की प्रतिक्रिया भी तीखी नहीं रही. खुमैनी को भी दोनों देशों के बीच संवाद की संभावना नज़र आ रही है. इसीलिए वो चाहते हैं कि महज बातों में वक्त जाया न किया जाए और अमेरिका जल्द से जल्द वास्तविक स्तर पर संवाद शुरू करे.

यहीं चंद सवाल खड़े करने की ज़रूरत है. आखिर इस नई–नवेली दोस्ती के पीछे की वजह क्या है. क्या एशिया के इस भाग में अमेरिका को नए दोस्तों की तलाश है. क्या उसके पुराने दोस्तों की प्रासंगिकता ख़त्म हो चुकी है. क्या पिछले कुछ सालों से इस इलाके के अमेरिकी हितों में बदलाव आया है. इन सारे सवालों का जवाब निश्चित तौर पर हां में होगा. अमेरिका ने अपना चश्मा भी बदला है और उसे नए सिपहसालारों की ज़रूरत भी है. आज की तारीख़ में सउदी अरब इस्लामिक राजनीति और इस्लामिक देशों के संगठन (ओआईसी) में महत्वहीन हो चुका है.

अमेरिकी पिट्ठू के तमगे ने इस्लामिक देशों के बीच उसकी प्रासंगिकता ख़त्म कर दी है. इराक के ख़िलाफ़ अमेरिका का साथ देकर मुस्लिम देशों की नाराज़गी का शिकार वह पहले ही बन चुका है. अब इज़रायल की मदद या ईरान पर हमला करना सउदी अरब के राजनीतिक हितों के ख़िलाफ़ ही होगा.

यह बात अमेरिका भी भली–भांति समझ रहा है कि सउदी अरब की ज़रूरत उसे इराक युद्ध के बाद नहीं पड़ेगी. अमेरिका का दूसरा मित्र पाकिस्तान यह माद्दा ज़रूर रखता है कि वह ईरान की सीमा में तालिबानों को घुसेड़ कर अराजकता पैदा करवा सकता है. लेकिन तालिबान भी अमेरिका की गिरफ़्त में कहां है. लिहाजा एशिया के इस भाग के लिए उसे नए दोस्तों की तलाश है. ऐसे वक्त में किसी दुश्मन को ही दोस्त बना लेना एक तीर से दो शिकार करने जैसा होगा. एक तो दुश्मन को साधने के लिए उसे अतिरिक्त ऊर्जा नहीं लगानी होगी, दूजे उसी दुश्मन का इस्तेमाल वह बाकी दुश्मनों को साधने में कर सकता है. अंतर्राष्ट्रीय संबधों में दोस्ती और दुश्मनी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं. सिक्का उछाले जाने के बाद ही तय होता है कि सिक्का दोस्ती के बल गिरेगा कि दुश्मनी के. ईरान पर हमले की पिछली अमेरिकी योजना औंधे मुंह गिर गई थी. आज की तारीख़ में अमेरिका ईरान पर हमला करने की क्षमता रखता है.

महज़ चंद दिनों के हमलों में वह ईरान को खाक में मिटा सकता है. लेकिन वह युद्ध लड़ता है, तो उसे जवाबी हमला भी झेलना पड़ेगा. ईरान अपनी क्षमता के आधार पर ही पहले दावा कर चुका है कि युद्ध थोपे जाने पर वह अमेरिकी हितों को निशाना ज़रूर बनाएगा और ऐसे में इज़रायल को गंभीर खतरा है.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

पर्दे के पीछे हुआ समझौता

लंबे अरसे से राजनीतिक पार्टियां संसद में दल–बदल कर अलग से मोर्चा बनाने वाले सदस्यों की समस्या से जूझ रही है. दल बदलने की यह प्रथा हमारे लोकतांत्रिक ढांचे का अंग बन चुकी है और इन सबसे बेपर की उड़ाने वालों को चारा मिलता है.

नेता कई बार अफ़वाहों को मंजूर करते और नकारते हैं. पत्रकार और आम जनता उनके कहे हर लफ्ज़ पर एतबार कर लेते हैं. इन सब के बीच, सबसे अहम समस्या यह है कि असली मसले दरकिनार हो जाते हैं. जैसे कि राज्य और आतंकवादियों के बीच होने वाले समझौतों में खुलापन नहीं रहता.

स्वात घाटी में आतंकियों के साथ हुआ समझौता आने वाले कई सालों तक अपना असर दिखाता रहेगा. ऐसी सूरत में कोई भी भरोसेमंद लोकशाही सबसे पहले अपने नागरिकों को भरोसे में लेती और न्याय–व्यवस्था आतंकवादियों के हाथ में सुपुर्द करने से पहले न्यायपालिका से समझौते के क़ानूनी सवाल पर राय लेता.

जहां तक स्वात घाटी समझौते का सवाल है, आम लोगों को दी गई जानकारी एक कहानी की तरह है. राज्य दावा कर रहा है कि उसने सही फैसला किया और इस समझौते से तालिबान के सामने घुटने नहीं टेके हैं. वहीं दूसरी तरफ तालिबान ने समझौते के लिए कुछ अधिकारियों को मेहमान बताते हुए अपहरण किया, और दोस्ताना माहौल में चंद सवालों के जवाब लेने के बाद उन्हें रिहा करने का वादा किया. यह सब महज इसलिए किया गया कि तय किया जा सके कि समझौतों में जीत किसकी हुई. इन सबके बीच पूछे जाने वाले वास्तविक सवाल और उनके संभावित जवाब दरकिनार कर दिए गए. कैसे हमने किसी आतंकी गुट को इतना अधिक संगठित होने, आतंकियों की भर्ती करने और इतना शक्तिशाली होने दिया कि वह एक इलाक़े में सरकार के ही कानून से ऊपर परे हो जाए. अब यह सवाल कि समझौते में कौन पहले झुका, उनके लिए बेमानी है, जो इस समझौते से आंतरिक तौर पर विस्थापित हुए हैं.

इस बीच, सांसदों की चुप्पी परेशान करने वाली है. अब वे जाहे सरकार में हों या विपक्ष में, किसी ने भी सवाल नहीं उठाए. किसी ने जांच की मांग नहीं की कि कैसे पाकिस्तानी सेना स्वात में आतंकियो के मंसूबे जानने में विफल रही और इलाके में आतंकियों की पैठ इस कदर बढ़ने दी कि राज्य के कानून का ही अस्तित्व नहीं रहा. विवाद बढ़ने पर पाकिस्तानी सेना को स्वात घाटी में अपनी पूरी ताक़त लगा कर कानून–व्यवस्था दुरुस्त करने के लिए लगाया गया. एक ऐसी सेना, जो बार–बार बड़ी सफाई और चतुराई से पूरे देश की राजनीतिक बागडोर को अपने हाथों में ले चुकी है, वह स्वात घाटी में विफल हो गई. साफ़ तौर पर यह किसी ने नहीं सोचा होगा कि पाकिस्तानी सेना पाकिस्तान के ही एक हिस्से पर कब्जा करने में नाक़ामयाब होगी. देश के राजनेताओं को डर है कि कहीं एक बार फिर वह सेना के गुस्से का शिकार न बन जाएं, लिहाजा वे सेना के शुक्रगुज़ार हैं कि उसने एक बार फिर देश की कमान अपने हाथ में लेने के लिए तख्तापलट नहीं किया.

हमें परदे के पीछे किए गए इस समझौते से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, जिसे बड़ी ताक़तों ने अपनी गंदगी छुपाने के लिए किया है.

अधिकारियों ने सोच–समझ कर ऐसे बयान जारी किए, जिसका कोई मतलब न निकाला जा सके. इन बयानों का मक़सद महज इतना था कि जनता की तीखी प्रतिक्रिया को शांत किया जा सके और तालिबान को स्वात घाटी में शरीयत लागू करने का वादा कर उसे फुसलाया जा सके.

वहीं तालिबान ने इस समझौते के बाद इलाक़े में कुछ लड़कियों को स्कूल जाने की इजाज़त देकर अपने नरम रवैये का इज़हार किया. भले ही इसके पहले वह इलाक़े में हज़ारों स्कूल और कॉलेज की इमारतों को तबाह कर चुका है. अब भले ही नॉर्थ–वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस की सरकार कुछ कह रही है और केंद्रीय सरकार, सेना और तालिबान कुछ और. इलाक़े में अस्थिरता और भ्रम की स्थिति बनी हुई है.

नवंबर 2007 के पूर्व की न्यायपालिका की बहाली से उम्मीद है कि वह उन अहम सवालों को पर्दे के पीछे न जाने दे. नागरिकों को सच जानने का अधिकार है. यह हजम करना कि 16,000 सैनिकों की टुकड़ी को स्वात भेजा गया और वह वहां की परिस्थिति देख कर उलटे पैर भाग आई, मुश्किल है. अंत में हमें बतौर राष्ट्र यह मानने के लिए कहा जा रहा है कि यह समझौता आतंकवादियों से किया गया है, जिनका स्वात घाटी पर कब्जा है और जहां वे तालिबानी शरीयत लागू कर सकते हैं. पर्दे के पीछे का यह समझौता किसी दूसरे देश से नहीं हुआ है बल्कि अपने ही समाज के एक अंग से किया गया है, जो इस इलाके में रहने वाले नागरिकों को आतंकवादियों के भरोसे छोड़ रहा है.

अफ़सोस इस बात का है कि यह सब यहीं नहीं ख़त्म हुआ. एक प्रेस कांफ्रेंस, जिसका भी मक़सद समझौते से जुड़ी हर अहम जानकारी को छिपाना था, के अलावा इस समस्या से आने वाले दिनों में निपटने का कोई ज़िक्र नहीं था. क्या हम इसे यथास्थिति मान लें और स्वात के लोगों का इंतज़ार करें कि वे कब इसका विरोध शुरू करेंगे. या फिर पाकिस्तान के पास स्वात को तालिबान की गिरफ़्त से छुड़ाने की कोई सोच अब भी है.

किसी भी दिमाग़दार शख्स के लिए, बहुत से अहम सवाल हैं, जिनके जवाब उन्हें चाहिए. यह मुद्दा सीधे हमारी सामाजिक संरचना को ख़तरे में डाल रहा है. इस समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए हमें इन सवालों के जवाब चाहिए. सवालों के जवाब के लिए हमें कठिन सवाल पूछने चाहिए. इस समझौते की जांच के लिए आयोग की मांग पिछले कई दिनों से हो रही है. असली ख़तरा इस सोच में है कि समस्या खुद–ब–खुद सुलझ जाएगी.

मोहम्मद शहरयार खाकवानी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

page 17 4/2/2009 2:33 AM Page 1

जादुई यथार्थवादी पत्रकार की परेशानी

अनंत विजय

आजकल एक खास फैशन चलन में है. फैशन के बारे में आपको थोड़ी देर में बताता हूं. उससे पहले यह बता दूं कि इस फैशन का जादू किनके सर चढ़कर बोल रहा है. ये इसी दुनिया के जीव हैं, यकीन मानिए. दूसरे ग्रह वाले तो नहीं ही हैं. न ही ये यू-ट्यूब से निकाले गए हैं, न ही ये डेस्क पर क्रिएट किए गए हैं. ये हमारे और आपके ही बीच के हैं. इनका वास्ता भी उन्हीं चीजों से पड़ता है, जिनसे आपका और हमारा पड़ता है. ये भी हर रोज सुबह साढ़े नौ बजे और तीन बजे परेशान भी होते हैं, इनको भी खबर चाहिए होती है. लेकिन इनकी परेशानी जरा हट के होती है. ये इस बात से परेशान होते हैं कि अब इस देश में प्रधानमंत्री को भाव नहीं दिया जा रहा है, केंद्रीय मंत्री की कोई सुन नहीं रहा, मुख्यमंत्री अगर कोई बयान देते हैं, तो उसे खबर नहीं माना जाता, सर्वहारा की सुनने वाला कोई नहीं है, कोई नेता अगर कुछ बोल देता है, तो उसे खबर क्यों नहीं बनाया जाता है. ये इसको पत्रकारिता का पतन या पतित काल मानते हैं और अपने साथियों को इस पतित-काल पर प्रवचन देते रहते हैं. तरह-तरह के तर्कों से ये साबित करने में लगे रहते हैं कि आज पत्रकारिता के नाम पर जो हो रहा है, वह इस पवित्र पेशे को धंधा बना रहा है.

पत्रकारिता पर बाजार के आक्रमण को जी भर कर गरियाते हैं. इन्हें इस तरह के बौद्धिक-मैथुन में एक खास किस्म के आनंद की प्राप्ति होती है. आनंद प्राप्ति का काम ये कहीं भी करते हुए पाए जा सकते हैं. इन्हें लगता है कि इस क्रिया के बाद उनका रसूख कुछ और बढ़ गया है, साथियों पर बौद्धिक होने का आतंक भी कायम हो गया है. चलिए अब आपको ज्यादा इंतजार नहीं करवाते हैं और बता देते हैं - ये न्यूज़ चैनलों में काम करनेवाले वैसे पत्रकार हैं, जो चैनल की मलाई तो खाना चाहते हैं लेकिन ज़रा छुपाकर. इन्हें लगता है कि ख़बर की जगह चैनलों में भांडगिरी हो रही है. सब कुछ ऐसे लोगों के हाथ में चला गया है जिनको न तो पत्रकारिता की समझ है और न ही पत्रकारिता के गौरवशाली इतिहास और परंपरा की. ये ख़बरों के साथ होने वाले सलूक का रंडी रोना रोज़ रोते हैं. उन्हें लगता है कि अब पत्रकारिता के नाम पर धर्म-कर्म, जादू-टोना, मारपीट, सेक्स और लुगदी साहित्य की भरमार हो गई है. न्यूज़ चैनलों की मलाई खाकर मोटे हो रहे इन महोदय की परेशानी राखी, राम और राजू यानी की थ्रीआर को लेकर है. वे इस बात से खासे खफ़ा हैं कि खबरिया चैनलों पर इस थ्री आर को इतना भाव क्यों दिया जा रहा है. राजू श्रीवास्तव जैसे मसखरे को टीवी चैनल वाले इतना क्यों दिखाते हैं. राखी सावंत अगर कुछ भी करती है, जो वो अमूमन हर दिन कर ही डालती हैं, तो उसे इतनी तवज्जो क्यों दी जाती है. राम के बारे में अब तक देश की अदालत कुछ तय नहीं कर पाई है लेकिन खबरिया चैनल हैं कि राम के परिवार, राम के जन्म-स्थान से लेकर उनका पुष्पक-विमान तक सब कुछ तलाश ले रहे हैं. न सिर्फ तलाश ले रहे हैं बल्कि सब कुछ बता देने के लिए घंटों तक तमाम तरह की कहानियों के साथ टीवी स्क्रीन पर मौजूद भी रहते हैं. इन बातों से ये जादुई यथार्थवादी पत्रकार बेहद परेशान हो जाते हैं. परेशानी के आलम में करवटें बदलते-बदलते अचानक रिमोट से एसी ऑन कर लेते हैं. चिंता में कब आंख लग जाती है, पता ही नहीं चलता. जिस बात की चिंता करते-करते सोए हैं, ज़ाहिर है, ख्वाबों में भी वही सब आएगा. सपने में सबसे पहले आते हैं भगवान राम, लेकिन उन जैसा ही एक साथी भी अचानक सपने में आता है और कहता है कि राम को भुना कर बीजेपी सत्ता में आ गई. ये बात तो समझ में आती है, लेकिन अब न्यूज़ चैनल राम को इतना दिखाकर क्या हासिल करना चाहते हैं? क्या ये निरी भक्ति है या फिर कुछ और. जवाब नहीं मिलता है और सपने का दृश्य बदल जाता है. राम की जगह राजू श्रीवास्तव लतीफा सुनाते हुए आते हैं. लतीफा सुनकर जादुई यथार्थवादी पत्रकार को जोरदार हंसी आती है और वे ठहाका लगाकर हंसने लग जाते हैं. फिर अचानक से उनका वही साथी दिखाई देता है और पूछ लेता है कि अरे तुम तो राजू के लतीफों पर हंस रहे हो, अचानक पत्रकार महोदय का चेहरा धीर-गंभीर हो जाता है और गंभीरता के आवरण से कछुए की तरह मुंह निकाल कर अपने साथी को लगभग डांटते हुए कहते हैं कि राजू को सुन कर हंसी नहीं आ रही बल्कि ये सोचकर हंसी आ रही कि खबरिया चैनलों में काम करनेवाले मित्रगण इस मसखरे पर क्यों फिदा रहते हैं.

क्यों कर इसको इतना टाइम देते हैं. किसी तरह समझा-बुझा कर अपने दोस्त को विदा करते हैं और फिर करवट बदल कर राजू और राम की सोच से मुक्त होने की कोशिश में जुट जाते हैं. लेकिन राम और राजू को निबटा कर जैसे ही चैन की नींद लेते हैं कि अचानक से बलखाती-इठलाती राखी सावंत सपने में आ जाती है. इठलाती हुई आइटम गर्ल राखी को सपने में देख कर यथार्थ और ख्वाब का ज़बरदस्त संघर्ष होता है. आखिरकार यथार्थ पर ख्वाब भारी पड़ता है और भाई साहब राखी के ख्वाबों में डूब जाते हैं. लेकिन फिर वही दुष्ट मित्र सपने में आता है और सवाल कर डालता है कि खबरिया चैनलों में राखी को इतनी तवज्जो क्यों दी जाती है. ख़्वाब में खलल से परेशान भाई साहब की चिंता इतनी बढ़ जाती है कि बौद्धिक स्खलन होते-होते बचता है और नींद खुल जाती है. जैसे ही नींद खुलती है, तो अपने खाकी निकर में बाथरूम की ओर भागते हैं. दोपहर की एडिट मीटिंग में जाने की तैयारी जो करनी थी. जब घर से निकलते हैं, तो यथार्थ का लाल चोला पहन कर दफ्तर जाने के लिए निकलते हैं, क्योंकि भाइयों चाहे जो भी हो, अगर आपके विचार लाल नहीं तो आप बौद्धिक नहीं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

वी पी सिंह

आईना

मेरा एक तरफ चमकदार है
उसमें चेहरों की चहल
पहल है
उसे दुनिया देखती है
दूसरी ओर
कोई नहीं
मैं भी नहीं
इसे मैं ही अकेले देखता हूं.

मुफ़लिस

मुफ़लिस से
अब चोर बन रहा हूं
पर
इस भरे बाज़ार से
चुराऊं क्या
यहां वह चीज़ें सजी हैं
जिन्हें लुटा कर
मैं
मुफ़लिस हो चुका हूं.

मुसलमान

आबिद सुरती

पिछले अंक में आपने पढ़ा था कि सूफी अपने पिता के तस्कर बनने की कहानी बयान कर रहा था. वह कहानी अभी पूरी नहीं हुई है. आइए, हम कहानी में आगे बढ़ते हैं.

'अब आप उन्हें तस्कर कहें या किसी और नाम से संबोधित करें, क्या फर्क पड़ता है?'

तीन साल के अल्प-समय में ही हुसेन अली ने लाखों रुपए अंदर कर लिए. उनके पैरों में ज़ोर आया. पत्नी गुलबानू की टीबी ठीक हो गई. इतना ही नहीं, उसका पांव भी भारी था.

एक सौ अस्सी वर्गफुट की वह कोठरी पति-पत्नी के लिए स्वर्ग बन गई. जैसे-जैसे प्रसव का दिन क़रीब आता गया, हुसेन अली की इबादत बढ़ती गई. उसके साथ शराब की आदत भी.

शुरुआत उन्होंने एक पैग से की थी. रोज़ शाम को बंदरगाह से जब वे थके-मांदे लौटते थे. तो व्हिस्की का एक पैग लेते, भरपेट खाना खाते और चैन की नींद सो जाते थे. पहले एक बोतल लगभग तेरह दिन तक चलती थी, पर अब एक बोतल भी कम पड़ने लगी.

गुलबानु का दिल अंदर-ही-अंदर मथता था. पर पति से कुछ कहने की हिम्मत उसमें नहीं थी. कहे भी तो क्या कहे? यही न कि इस्लाम ने शराब को हराम क़रार दिया है? शराब और नमाज़ में भाईचारा नहीं होता? क्या ऐसी बुनियादी बातें उसका पति नहीं जानता कि उसे समझानी पड़े?

'इसका नतीजा क्या हुआ?' मैंने बीच में पूछा.

सूफ़ी ने एक ही शब्द में उसका उत्तर दिया, 'कलह!'

सूफ़ी की मां गुलबानू सुशिक्षित नहीं थी. धर्म की शिक्षा उसे घर के बड़ों और मुल्लों से मिली थी. उसका इस्लाम हराम और हलाल इन दो हिस्सों में बंटा था. नेकी और बदी, सत्य और असत्य, काला और सफ़ेद- जीवन के हर पहलू को वह इसी नज़रिए से देखती थी.

पलभर के लिए भी उसने यदि इन सीमाओं की सतह से ऊपर उठकर पति के भीतर झांकने की कोशिश की होती, तो शायद उसकी अपनी पीड़ा कम हो जाती और वह खुद को पति के ज़्यादा क़रीब पाती.

तेल चुक जाने पर दिए की मद्धिम पड़ती ज्योति भभकती है और बुझ जाती है.

हुसेन अली के व्यसन की यह अंतिम भभक थी. शराब छोड़ने का विचार वह जैसे-जैसे दृढ़ करते जा रहे थे, शराब अधिक पीते जा रहे थे. एक्शन और रिएक्शन, क्रिया तथा प्रतिक्रिया समान और विरोधी होती है.

जीवन से हारे हुए मेरे पिता गुलाम हुसेन ने भी जान की बाज़ी लगाकर एक अंतिम प्रयास किया. सूफ़ी के पिता पत्नी के महारोग से दुःखी होकर तस्करी की ओर मुड़े, मेरे पिता ने भूख और नौकरी से तंग आकर मंत्र-तंत्र की दिशा में रुख किया.

अंत में उन्होंने चालीस दिन का 'चिल्ला' (वज़ीफ़ा) ख़ींचने का टोटका अमल में लाने का निश्चय किया. चिल्ला अर्थात चालीस दिन तथा रात इबादत में बिताकर मुवक्क़िलों (प्रेतात्माओं) को वश में करना.

कहा जाता है कि जिसके वश में प्रेत सृष्टि हो जाती है, उसके स्पर्श में चमत्कार आ जाता है. हाथ में ज़रा-सी धूल लेकर फूंक मारे, तो वह सोना बन जाए. मृत्युशैया पर पड़े रोगी के सिर पर हाथ रख दे, तो वह उठ कर बैठ ही जाए. तांत्रिकों की तरह मेरे पिता ने इस्लामिक मंत्र-तंत्र का जाप शुरू कर दिया. दिन-रात वे नमाज़ पढ़ते, दुआएं पढ़ते और कुरान की चुनी हुई आयतें दोहराते. इन्हीं दिनों मेरी मां का भी पांव भारी था. मेरे जन्म और पिताजी की सफलता के बीच अब थोड़े ही दिन बाक़ी थे. मां की चिंता बढ़ती जा रही थी.

सूफ़ी की मां की चिंता भी कोई कम न थी. रोज़ की तरह उस दिन हुसेन अली सुबह से पी रहे थे. दोपहर तक एक बोतल ख़ाली हो गई थी. उन्होंने दूसरी बोतल उठाई और उसी समय गुलबानू को प्रसव पीड़ा उठी.

शराब की इस नई बोतल का ढक्कन फंस गया था. एक ओर पत्नी की कराह थी, दूसरी ओर हुसेन अली बोतल का ढक्कन खोलने के लिए परेशान थे. उधर गुलबानू की पीड़ा क्रमशः बढ़ती जा रही थी. अब वह कराह नहीं रही थी, बल्कि चीख़ रही थी.

क्षण भर हुसेन अली ने पत्नी की ओर देखा. गुब्बारे की तरह फूला हुआ उसका पेट देखा. सांस लेने के लिए संघर्ष करती पत्नी का चेहरा देखा और बोतल को गर्दन से पकड़ कर दीवार पर दे मारा. हाथ में गर्दन रह गई. बोतल चूर-चूर हो गई. शराब दीवार से बह-बह कर फ़र्श पर फैल गई.

21 नवंबर, 1949 में सूफ़ी का जन्म हुआ. उन्हीं पलों में हुसेन अली व्यसन-मुक्त हो गए. शराब को कभी हाथ न लगाने की उन्होंने क़सम खा ली, नए सिरे से जीवन शुरू करने का मंसूबा बना लिया था.

मेरे पिता इतने भाग्यशाली नहीं थे. 'चिल्ले' का चालीसवां दिन कसौटी का होता है. कहा जाता है, उस दिन रात को प्रेतात्माएं बिफ़रती हैं और जो व्यक्ति उन पर काबू पाने के लिए मैदान में उतरा होता है, उस पर पूरी ताक़त लगा कर धावा बोल देती है. अलबत्ता, यह हमला शारीरिक नहीं, मानसिक होता है

भूतों का पूरा संसार आंखों के सामने आ जाए, भयानक चीख़ों के साथ बिना सिरवाले ख़बीसों की सिसकियां सुनाई दें और पोपले मुंह वाली चुड़ैलें सीना पीट-पीट कर मातम करें, तो कमज़ोर दिल का आदमी टिक नहीं सकता. मेरे पिता का दिल ज़रूरत से कुछ ज़्यादा ही मुलायम था.

उसी दिन रात को एक साथ दो चीख़ें सुनाई पड़ीं. एक चीख़ थी मेरी मां की. मेरा जन्म हुआ था. दूसरी चीख़ थी मेरे पिता की. वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठे थे. मेरे भाग्य में एक पागल पिता आए, तो सूफ़ी को एक स्नेही पिता मिले थे. हुसेन अली ने उसका नाम इक़बाल रखा.

इक़बाल के जन्म के बाद उसके पिता ने न केवल शराब की लत छोड़ी थी, बल्कि क्लीयरिंग एजेंट के मातहत वह जहां नौकरी करते थे, वहां से भी छुट्टी ले ली. उसमें तनख्वाह ज़्यादा नहीं थी, पर ऊपर की कमाई ज़्यादा थी. ख़ासतौर से वहां तस्करी का कारोबार धुआंधार चलाया जा सकता था. इन सारे प्रलोभनों से बचने का एक ही उपाय था - प्रलोभन की भूमि को तिलांजलि दे दी जाए. कीचड़ में जाएंगे, तो पैर मैले होंगे ही. उनका निर्णय अटल था. पर अब क्या? भविष्य का क्या? कुछ हद तक यही समस्या बंबई के आज के डॉन दाऊद इब्राहिम शेख़ की भी थी. हुसेन अली की तरह उसने भी क़रीब एक लाख रुपये अंदर कर लिए थे. नई ज़िंदगी शुरू करने का उसका भी इरादा पक्का था.

पांचवें दशक में इब्राहिम शेख़ क्राइम ब्रांच का तेज़-तर्रार कांस्टेबल था. ये वे वर्ष थे, जब मुसलमान पुलिस अधिकारियों ने अपराध-अन्वेषण में अच्छा-ख़ासा नाम कमाया था. कांस्टेबल ख़ान (जो नं. 303 से जाना जाता था) तथा कांस्टेबल इज़राइल भी उसमें शामिल था.

केवल डोंगरी में ही नहीं, बल्कि पूरी बंबई में इन तीनों पुलिसकर्मियों की ऐसी ज़बरदस्त धाक थी कि दूर से ही उनके दर्शन होने पर गुंडों के होश फाख्ता हो जाते थे. फिर भी एक टोली ने फोर्ट मार्केट के पास स्थित मलॉइड बैंक लूटने की हिम्मत कर डाली.

बंबई शहर के इतिहास में इसके पहले इस तरह की सुनियोजित और इतनी बड़ी लूट न किसी ने जानी थी, न सुनी थी. सुबह के सभी अख़बारों ने यह समाचार मोटे अक्षरों में सुर्ख़ियां बांध कर पहले सफ़े पर छापा. पूरे शहर में सनसनी फैल गई थी.

क्राइम ब्रांच के जिस अधिकारी को यह मामला सौंपा गया, उसने इब्राहिम शेख़, इज़राइल तथा ख़ान - 303 को अपने साथ लिया. इन त्रिमूर्तियों ने असंभव लगते इस मामले के लुटेरों का पता एक सप्ताह के अंदर लगाकर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया.

इब्राहिम शेख़ को अब नौकरी करने की ज़रूरत नहीं लगी. इतने वर्षों की नौकरी में उसने क़रीब एक लाख रुपये इकट्ठे कर लिए थे. दूसरे, पुलिस विभाग में मुसलमान अफ़सरों का असंतोष अब सतह पर साफ़ दिखाई देने लगा था.

हुसेन अली ने डॉक की नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया. इब्राहिम शेख ने भी अब पुलिस विभाग से छुट्टी ले ली (न कि सस्पेंड हुआ था). उसने एक दुकान ख़रीद कर 'हेअर कटिंग सैलून' खोल लिया. हुसेन अली ने स्वतंत्र रूप से धंधे में अपना सब कुछ दांव पर लगाने का फ़ैसला किया.

उन दिनों कॉटन (रुई) के सट्टे का व्यापार अपने चरम पर था. इसमें लोगों ने हज़ारों के लाखों बनाए थे और लखपति रातों-रात करोड़पति बन बैठे थे.

'करोड़पति बनकर क्या करेंगे?' उसका विचार जान कर गुलबानू ने प्रश्न किया, 'सुख से जीने के लिए क्या लाख काफ़ी नहीं हैं?'

'नहीं', वे बोल उठे, 'ये रुपए आज हैं, कल न भी रहें. दूसरे, मुझे बेटे को पढ़ाना है और इससे ज़्यादा पढ़ाने के लिए ज़्यादा रुपए चाहिए. बेटा बड़ा होकर आगे पढ़ाई के लिए विदेश जाएगा, तब क्या ज़्यादा रुपयों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी?'

किसी ने यदि हुसेन अली को सट्टे का कमज़ोर पहलू दिखा कर उन्हें बताया होता कि इसमें न जाने कितने करोड़पति एक ही रात में कंगाल भी बन चुके हैं, तो संभव है, उन्होंने अपनी जमा-पूंजी किसी और धंधे में लगाई होती. इब्राहिम शेख़ भी लाख रुपए 'हेयर कटिंग सैलून' में लगा कर सुखी नहीं था, पर सबसे ज़्यादा खस्ता हालत हमारे घर की थी. मेरे पिता लंबी बीमारी का शिकार होकर खाट पकड़ चुके थे. दिन-रात वे बिस्तर पर पड़े रहते. न कुछ बोलते, न कुछ कहते. मेरी मां खाना परोस देती, तो चुपचाप खा लेते. पूरे घर का बोझ भी अब क़रीब-क़रीब मां के सिर पर आ पड़ा था.

कुल मिला कर हमारे परिवार में छह सदस्य थे. हम तीनों के अलावा मेरी दादी मां तथा मेरे दो चाचा भी हमारे साथ रहते थे. बड़े चाचा को नौकरी में दिलचस्पी नहीं थी. छोटे चाचा मोहम्मद हुसेन की नौकरी की अभी उमर नहीं थी.

मेरी मां, जो करोड़पति की बहू बन कर आई थी, उसने अपनी सोने की आख़िरी दो चूड़ियां बेच डालीं. इन पैसों के ख़त्म होने से पहले कोई काम खोज लेना ज़रूरी था. घूंघट की मर्यादा को ताक पर चढ़ा कर उसने पास-पड़ोस की औरतों के छोटे-मोटे काम करना स्वीकार कर लिया.

मेरे छोटे चाचा मोहम्मद हुसेन से यह न देखा गया. उन्होंने सोलह साल की उमर में ही नौकरी की तलाश में भटकना शुरू कर दिया. अंत में उसी बंदरगाह की नौकरी उन्होंने स्वीकार कर ली, जो भ्रष्टाचार का केंद्र था.

कुछ ही सालों में, एक ईमानदार और भरोसेमंद इंसान के रूप में उनकी शोहरत चारों तरफ फैल गई. इसके अलावा समाज-सेवा का काम उन्होंने अपना लिया. उनकी ख्याति और फैली, पर आर्थिक दृष्टि से हम जहां थे, वहीं रहे. सुल्तान मेंशन के एक कमरे में हम रहते थे. हमारी इज़्ज़त बढ़ी थी, आमदनी नहीं. फिर भी, एक फ़ायदा ज़रूर हुआ. करीम लाला जैसे डोगरी के नामी डॉन और पुलिस के अधिकारी मोहम्मद हुसेन को इज़्ज़त की नज़र से देखने लगे.

'मोहम्मद भाई', एक शाम इब्राहिम शेख़ ने हमारे यहां आकर अपनी परेशानी उन्हें बताई, 'पुलिस महकमे की नौकरी छोड़कर 'हेयर कटिंग सैलून' खोला. सोचा था, घर बैठे सुख से रोटियां तोड़ूंगा.'

'ठीक नहीं चल रहा है?'

'नौकरों की तनख्वाह तक अपने पास से देनी पड़ती है.'

'आपके पास जगह है', मेरे चाचा ने उन्हें सलाह दी, 'कोई दूसरा कारोबार सोचिए.'

काफ़ी देर तक वह हमारे घर बैठा रहा. बातें करता रहा. उसकी समस्या यह थी कि कौन-सा नया कारोबार किया जाए? और करीम लाला ने उसकी उलझन पलक झपकते दूर कर दी. उसे अपनी छत्रछाया में ले लिया. इब्राहीम शेख़ करीम लाला और पुलिस के बीच की कड़ी बन गया. करीम लाला के पुलिस से संबंधित मामले निपटाने का काम अब इब्राहीम शेख़ के ज़िम्मे था, और यह काम उसके बाएं हाथ का खेल था. पुलिस स्टेशन के चपरासी से लेकर चीफ इंस्पेक्टर तक के दाम वह जानता था.

अब्बासी मंज़िल के पहले मंज़ले की अपनी कोठरी से बाहर निकल हुसेन अली सीढ़ियों से नीचे उतर गए. उनकी एक ओर गार्डिया स्कूल था, तो दूसरी ओर ख़ोजा मस्जिद का पिछवाड़ा. नमाज़ के समय वे मस्जिद में बिना नागा पहुंच जाते थे.

आज शुक्रवार था. जुम्मे की नमाज़ छोड़ने का सवाल ही नहीं था. सफ़ेद बुशर्ट के नीचे सफ़ेद पैंट पहने वे हौले-हौले कदम बढ़ाते मुंडागली पार कर पालागली में आए और उनकी नज़र अपने पुराने मालिक पर पड़ी.

'हुसेन,' वे कुछ कहें, इसके पहले मालिक ने कह दिया, 'तुम्हारी इच्छा हो तो तुम दोबारा डॉक पर नौकरी में लग सकते हो. तुम्हें नौकरी देकर मुझे खुशी होगी.'

हुसेन अली हैरत से उसके सामने देखते रहे. एक बात का उन्हें यक़ीन हो गया, उनकी कंगाली की हालत का पता सेठ को चल गया था. उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया. मालिक को भी और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी. समझदार के लिए इशारा काफ़ी होता है.

हुसेन अली के दिमाग़ में बवंडर उठने लगा. लाखों रुपए आसानी से कमाने का रास्ता एक बार फिर उनके सामने खुल रहा था. वे एक बार फिर लखपति बन सकते थे.

वे जुम्मे की नमाज़ पढ़ते जा रहे थे और बेचैन करने वाले विचारों को परे धकेलते जा रहे थे. नमाज़ पूरी होने पर जब उन्होंने दुआ के लिए अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए, तो उनके कानों में ये शब्द गूंज उठे.

'समय-समय पर खुदा अपने बंदों का इम्तिहान लेता है. वह बंदा चाहे अदना इंसान हो या शहंशाह, पैग़ंबर हो या इमाम, जो आदमी इस इम्तिहान में पास हो जाता है, वही फ़ख्र के साथ खुद को खुदा का नेक बंदा कह सकता है.'

जुम्मे की नमाज़ के बाद, नमाज़ियों को संबोधित करते समय पेश इमाम द्वारा बोले गए इन शब्दों ने मानसिक रूप से डांवाडोल हुसेन अली की कमर एक बार फिर सीधी कर दी. उन्होंने नौकरी करने का फ़ैसला कर लिया. बंदरगाह में नहीं, एक डिपार्टमेंटल स्टोर में.

जुम्मे की नमाज़ में ही उन्हें पता चला कि बंबई के क़रीब उपनगर बांद्रा के लिंक बाजार में एक जगह ख़ाली है. दूसरे दिन उन्होंने मालिक से मुलाक़ात की और माहवार तीन सौ रुपए की तनख्वाह पर उनकी नौकरी तय हो गई. साठ के दशक में तीन सौ रुपए, आज (1989) के लगभग तीन हज़ार रुपये के बराबर थे.

यह दशक सोने की तस्करी का स्वर्णयुग था. तत्कालीन वित्तमंत्री मोरारजी देसाई के 'गोल्ड कंट्रोल एक्ट' (स्वर्ण नियंत्रण अधिनियम) की कृपा से सोने के दाम जेट विमान की गति से बढ़ रहे थे. 'अंतर्राष्ट्रीय सोना बाजार' की अपेक्षा भारत में सोने का भाव लगभग चार गुना हो गया था. भारत में सोने का अकाल पड़ा.

बंबई बुलियन एसोसिएशन के आंकड़ों के अनुसार देश में लाइसेंसशुदा दस हज़ार सोने के व्यापारी तथा ढाई लाख सर्टिफाइड सुनार हैं. वर्षभर में वे सौ टन सोने का, अर्थात दो हज़ार करोड़ रुपए का व्यापार करते हैं. इसमें से 50 प्रतिशत सोना वे पुराने गहनों को पिघला कर प्राप्त करते हैं, जबकि सरकार की सोने की खानों से उन्हें मात्र 25 टन सोना मिलता है, वह भी कारखानों के इस्तेमाल के लिए.

बाज़ार की मांग पूरी करने के लिए व्यापारियों के पास तस्करों को दाना डालने के सिवा और कोई चारा नहीं था. हाजी मस्तान ने यह मौक़ा हथिया लिया. अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि गुजराती और मारवाड़ी व्यापारियों ने मिलकर उसे सोने की तस्करी का माध्यम बना लिया.

संक्षेप में :

सोने की तस्करी के स्वर्णयुग का आरंभ हुआ. हाजी मस्तान की टोली में शामिल होने के लिए डोंगरी के बेरोज़गार युवकों में होड़ लग गई. हुसेन अली अपनी नौकरी से चिपके रहे.

(अगले अंक मे जारी)

एच सी एल का नया लैपटॉप मार्केट में

एच सी एल ने हाल ही में अपने सबसे सस्ते एवं पोंटेबल लैपटाप मिलियेप को मार्केट में लांच किया. 13990 रुपए की रेंज से शुरू होने वाले इस लैपटॉप को विश्व का अब तक का सबसे सस्ता लैपटॉप माना जा रहा है. लैपटाप में फ्लैश बेस्ड एवं डिस्क बेस्ड जैसे स्टोरेज सिस्टम के साथ साथ लिनक्स बेस्ड ऑपरेटिंग सिस्टम भी मौजूद है. इस सीरीज का सबसे महंगा मॉडल 16990 रुपए में मार्केट में उपलब्ध है. मार्केट में यह लैपटॉप दो सीरीज मिलेप द और मिलेप ध में मौजूद है. मिलेप ध की कीमत 29990 रुपए है. इस सीरीज की खासियत इसकी टचस्क्रीन स्टाइल्स की-बोर्ड टच बटन्स एवं विन्डो-विस्टा होम आपरेटिंग सिस्टम है. दोनों ही सीरीज में नेटवर्क पोर्टल्स, वाइ-फाइ, डाटा कार्ड जैसी आवश्यक सुविधाओं के साथ लिनक्स बेस्ड ऑपरेटिंग सिस्टम की सुविधा भी मौजूद है.

गैज़ट समझने लगेंगे इशारों की भाषा

वह दिन दूर नहीं, जब आपके इलेक्ट्रॉनिक आइटम आपके इशारों से ही कंट्रोल होने लगेंगे और आपके हाथों को जहमत भी नहीं उठानी पड़ेगी. यानी आपकी एक स्माइल या भौंहें चढ़ाने से ही आपके आई पॉड पर बज रहा म्यूजिक बदल जाएगा.
यहां तक कि एक इशारे भर से वाशिंग मशीन तक चालू हो सकेगी और यह सब मुमकिन होगा एक नए जापानी गैज़ट से. यह नई डिवाइस किसी आम हेडफोन की तरह ही दिखती है, पर इसमें इंफ्रारेड सेंसर्स लगे होते हैं. ये सेंसर आपके कान के भीतर होने वाली छोटी से छोटी हरकत को भी भांप लेंगे. कान के भीतर होने वाली ये हरकत कहीं और से नहीं, बल्कि आपके चेहरे के अलग-अलग एक्सप्रेशन्स से पैदा होंगी. *मिमी स्विच* या *इयर स्विच* नाम का यह गिज्मो एक माइक्रो कंप्यूटर से जुड़ा रहेगा. इसी माइक्रोकंप्यूटर से इलेक्ट्रॉनिक मशीनें कंट्रोल होंगी. इस हैंड्सफ्री रिमोट कंट्रोल सिस्टम से कोई भी मशीन कंट्रोल की जा सकेगी. इस यंत्र का आविष्कार जापान की ओसाका यूनिवर्सिटी से जुड़े काजुहीरो तानीगुची ने की है. तानी-गुची के मुताबिक, इस यंत्र से कमरे की लाइटें ऑन-ऑफ की जा सकेंगी या फिर अपने मुंह के एक झटके से ही आप वॉशिंग मशीन को स्टार्ट कर सकेंगे. यहां तक कि आपके जीभ बाहर निकालने भर से आई पॉड चलने लगेगा या चलते-चलते रुक जाएगा. इसी तरह आंखें फैलाने पर आई पॉड दूसरी धुन बजाने लगेगा. पिछले गीत पर जाने के लिए दाईं आंख से झपकी देना ही काफी होगा. मिमी स्विच जानकारी जमा करने के अलावा उसे समझ भी सकेगा. इस तरह हर उपयोग करने वाले के बारे में जानना मशीन के लिए मुमकिन रहेगा.

बाज़ार में एप्पल का नया आई-पॉड

गैजेट्स के शौकीन लोगों के लिए यह खुशखबरी होगी कि 4 जीबी की क्षमता वाला शफल म्यूजिक प्लेयर आईपॉड भारतीय बाज़ार में पहुंच चुका है. इस नए-नवेले एप्पल आई पोड की कीमत 79 डालर है. इसकी खास बात है कि इसमें स्क्रीन नहीं है. लिस्ट में आगे के गानों की जानकारी सुनने वाले को वॉयस फंक्शन के जरिए 14 अलग-अलग भाषाओं में मिल जाएगी, साथ ही बैटरी की स्थिति का पता भी वर्बल तरीके से सुनाई दे जाएगा. कंपनी ने इसे आर्कषक काले और चमकदार सिल्वर रंग में उतारा है. तीसरी पीढ़ी के इस शफल म्यूजिक प्लेयर को विश्व का सबसे तेज और छोटा म्यूजिक प्लेयर माना जा रहा है.

गेम - रेड अलर्ट 3

इस गेम को रेड लेटर 3 भी कहा जा रहा है. अगर आपने रेड अलर्ट के पहले के वर्ज़न खेल चुके हैं, तो आप जानते हैं कि रेड अलर्ट एक्शन की दुनिया के सबसे बेहतरीन गेम्स में से है. इस बार प्ले स्टेशन 3 कंसोल पर इस गेम को उतारा गया है. इस गेम में आपको अपनी सेना जुटानी है, विरोधियों को नुकसान पहुंचाना है और उनके ठिकानों पर कब्ज़ा जमाना है. साथ ही आपको अपने संसाधनों का विकास और देखरेख भी करनी है. गेम में आपकी निर्माण और विकास की सूझबूझ ही आपको बेहतर खिलाड़ी बनाती है.

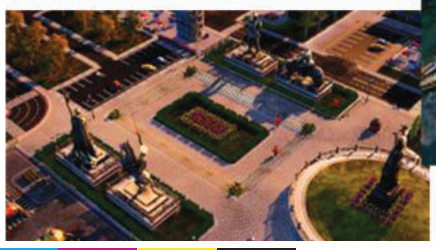

गेम को जो लाजवाब बनाता है, वह है इसका कमाल का साउंड इफेक्ट और बेहतरीन ग्राफिक्स.

हालांकि गेम को विकसित करने वाली कंपनी ईए गेम्स ने इसे रेड अलर्ट के अल्टीमेट वर्ज़न का नाम दिया है. अल्टीमेट वर्ज़न के नाम पर कुछ नए फीचर्स जरूर जोड़े गए हैं लेकिन कोई खास बदलाव नहीं है. हां, पानी और सड़क के विजुअल और बेहतर हो गए हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

page 19 4/2/2009 2:04 AM Page 1

राशिफल

(5 अप्रैल से 11 अप्रैल तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

इस सप्ताह आपके काम करने की गति अनियमित होगी. आप अपनी प्रतिभा और क्षमता का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पा रहे और इनसे पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं. हालांकि रोज़मर्रा के बहुतेरे मुद्दे अब आपके नियंत्रण में हैं. प्रगति की अनियमितताओं के बावजूद आप उस समय सीमा पर काम पूरा कर लेंगे, जो आपने तय की है. यह आपके लिए संतोषप्रद होगा, हालांकि नई दिशाओं की ओर देखने में कोई बुराई नहीं है. वजह यह कि आप जब ऐसे नए क्षेत्रों और दिशाओं में काम करते हैं, जो आपको आपकी क्षमता के विकास और बेहतर परिणामों के लिए प्रेरित करते हैं, तो आप लाभ में रहते हैं. व्यापार में, बड़े सौदों या निवेशों पर ज़ोर न दें. नज़रिया तात्कालिक लाभ पर रखें, तो आपके लिए फायदेमंद होगा.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

लंबे समय से चली आ रही कुछ परेशानियों से छुटकारा पाने की इच्छा और सही दिशा में चलने की संतुष्टि इस सप्ताह आपके हर निर्णय के पीछे एक प्रेरणादायक विचार की तरह काम करेगी. एक नई योजना, दस्तावेज या प्रस्तुतीकरण तैयार करने में आपकी अधिक ऊर्जा लगेगी. हालांकि आप पहले से ज़्यादा बदलाव लाएंगे, लेकिन आपके निर्णय, खासकर किसी गतिरोध में, आपको संतुष्टि देंगे. अच्छी बात यह है कि आप बहुत सारी बाधाओं से पार पा लेंगे और कई प्रभावशाली व्यक्तियों की नज़र में भी आएंगे. व्यापार में, एक सलाह है, खर्चे को नियंत्रण में रखें. साथ ही आय बढ़ाने के नए अवसरों की तलाश जारी रखें.

मिथुन
21 मई से 20 जून

राजनीतिक और आर्थिक अनिश्चितताओं की वजह से यह चिंता का समय है. लेकिन ग़लती न करें, नई रणनीतियां बनाना और भी ज़रूरी होगा, क्योंकि अब यही आपको कम समय में अचानक सामने आई परिस्थितियों का पूरा फ़ायदा उठाने और आपके संसाधनों के सही इस्तेमाल करने की क्षमता देगा. इसमें कोई शक नहीं कि आप बड़ी से बड़ी चुनौतियों से निपट पाएंगे. आप देखेंगे कि योजनाबद्ध तरीके से काम करने से कई नए विचार भी मन में आते हैं. इसके अलावा प्रतिस्पर्धा से जुड़ी कोई समस्या आपको अधिक मेहनत करने पर मजबूर करेगी. व्यापार में, आप नई समय-सीमाएं तय कर सकेंगे, आपके निवेश भी उम्मीदों पर खरे उतरेंगे.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

आप अपनी विशेष क्षमताओं का इस्तेमाल करने के बुद्धिमानी भरे प्रयास करेंगे. परिणामस्वरूप कई लुभावनी, प्रेरणादायक संभावनाएं और विकल्प आपके सामने होंगे. आप ऐसी परिस्थितियों को बदलने की पूरी कोशिश करेंगे, जो आपकी उम्मीदों से कमतर होगी. काम की गति में अनियमितता रहेगी लेकिन आप इसका असर काम पर नहीं पड़ने देंगे. कभी तो आप ऐसी योजनाएं बना रहे होंगे, जो परिस्थितियों को आपकी ओर मोड़ दे. कभी आप रोज़ाना के कामों में ही व्यस्त रहेंगे, तो कभी भविष्य की योजनाएं सोचते रहेंगे. व्यापार में, यह लाभ के लिए नए व्यवहारिक फार्मूले अपनाने का समय है.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

आशावादी विचार और प्रेरणा से आप सभी से आगे बढ़ कर बेहतरीन परिणाम देंगे. जिस विषय पर आपने काफी वक्त बिताया है, उस विषय के महत्व को अब समझा जाएगा. आपको अपने लक्ष्य को पाने के लिए पूरी सहायता मिलेगी और इससे आपको अपने दिल के क़रीब के किसी विषय पर समय देने की ताक़त मिलेगी.

परिणामतः आगे आप किसी बड़े लक्ष्य या काम के लिए तैयार होंगे. सबसे बड़ी बात होगी कि आप अपनी शर्तों पर काम कर सकेंगे.

साथ ही आप इन बदलावों से बिना प्रभावित हुए वास्तविक समय सीमा से जुड़े रह कर अपने तरीक़े की योजना बना पाएंगे. व्यापार में, नए उपायों के लिए ज़मीन तैयार करने का यह सही समय है. आपको अपने फ़ायदे को दृढ़ता से बनाए रखना भी ज़रूरी है.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

नई चीज़ों को संभालते हुए अपना ध्यान अपने लक्ष्य पर रखना आपके लिए सबसे बड़ी चुनौती है. ऐसा हो सकता है कि आप किसी और दिशा में शुरुआत करें, पर आपको अचानक ही रास्ता या दिशा बदलनी पड़े. आप में से कुछ को किसी महत्वपूर्ण मौके पर कई तरह की गतिविधियों का संचालन करना पड़ सकता है. जब तक आप ज़मीन से नहीं जुड़े रहेंगे, तो कई अस्थायी तत्व आपको आपका लक्ष्य या कार्यसंतुष्टि नहीं पाने देंगे. इसलिए अचानक पैदा हुई ज़रूरतों से अपने लक्ष्य से ध्यान न भटकने दें. कार्य और व्यापार से जुड़े क्षेत्रों में बड़े फ़ायदों के लिए ज़मीन तैयार न हो जाए, तब तक नए उपायों से बचें. व्यापार में, यह समय उन सौदों पर ध्यान देने का है, जो घाटे में हैं. आप उनमें से कुछ को उबार पाने में सफल होंगे. आप एक से ज़्यादा नए संतोषजनक सौदे कर पाएंगे.

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

काम धीरे हो रहा है, मन में चल रहे इस विचार से परेशान न हों. आपने हाल में कुछ ठोस उपलब्धियां पाई हैं. अपने क्षेत्र में एक शानदार दूरी भी तय कर ली है. इतना ही नहीं, आपने नए मानक स्थापित किए हैं, कई बाधाएं पार की हैं. ये सभी बातें आपको एक बेहतर और परिणामदायक कार्यप्रणाली के लिए प्रेरित कर रही हैं. आप जिस रास्ते पर चल रहे हैं, वह आपको लक्ष्य की तरफ तेज़ी से बढ़ने से रोक रहा है, इस बात के भी अपने फ़ायदे हैं. इससे आपको समझ आएगा कि बेहतर योजना कई बाधाओं और देरी से बचा सकती है. नई चुनौतियों के अलावा सबसे अच्छा होगा कि आप पूरी तरह से ध्यान केंद्रित रखें और अपनी क्षमताओं और उद्देश्यों पर बने रहें. व्यापार में, किसी नए क्षेत्र में उतरने से पहले उसके लाभ और हानि पर विचार करना फायदेमंद रहेगा.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

बेहतर होगा कि अच्छे परिणामों के प्रति आपकी प्रतिबद्धता को खुद ही बोलने और अपनी विशेषताओं से सबका ध्यान खींचने दें. यह समय आपमें से बहुत लोगों के लिए खराब है, मतलब कि अगर आप केंद्रित तरीके से काम करें, तो आसानी से दूसरों पर बढ़त पा सकते हैं.

यह तरीक़ा आपकी उम्मीद से पहले परिणाम देगा. आप खुश रहेंगे कि आपकी मेहनत का फल आपको इतनी जल्दी मिल रहा है. जाहिर है, आपकी महात्वाकांक्षाएं ज़ोरों पर होंगी, जो आपके लिए अच्छा है. व्यापार में, एक योजनाबद्ध तरीक़े से ज़ोर लगाने की ज़मीन तैयार करना लाभकारी रहेगा, फंडिंग और आपूर्ति के स्रोतों के साथ विकल्प तैयार रखना अच्छा विचार होगा.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

इस सप्ताह अनिश्चितताएं ख़त्म होंगी और आप अपने लक्ष्य की ओर अपने अंदाज़ में बढ़ेंगे. आप अपने तरीक़ों में भी परिवर्तन करेंगे और अपनी संचार-क्षमता का अधिकतम इस्तेमाल करेंगे. नए विचारों और प्रभावों से लैस होकर आप में से अधिकतर को हर उस काम में सफलता मिलेगी, जिसे आप पाना चाहते हैं.

इसके अलावा, आपकी क्रियात्मक क्षमताएं चोटी पर होंगी और आपको अपने हरेक निर्माण में सफलता मिलेगी. खासकर अगर इसमें कुछ ऐसे लोगों के सामने आपको अपने विचारों को प्रस्तुत करना हो, जो अपने क्षेत्र के माहिर हों. आपके तर्कों या विरोधों की काट करना लोगों के लिए मुश्किल होगा.

हालांकि, कोशिश करें कि आप लोगों को उस हद तक समझाने की कोशिश न करें, जहां उस आदमी में भी ईर्ष्या जाग जाए जिसकी सदिच्छा आपके लिए अहम है. व्यावसायिक और वित्तीय मामलों में दृढ़ता आवश्यक होगी, खासकर जहां शर्तें और नियम लागू हों.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

घटनाएं, बैठकें और संवाद इस सप्ताह आपको व्यस्त रखेंगे. इसी से आपके भविष्य का रास्ता भी तय होगा. दरअसल संवादों के जरिए आपको बहुत बढ़िया और नए विचार मिलेंगे, जिससे आपके मामलों को नए फ़ायदे मिलेंगे. जाहिर तौर पर, कई बार चीज़ें आपकी योजना के अनुसार नहीं होंगी, आपकी योजना में देरी होगी और कई बार आपको बिल्कुल जल्दी में फ़ैसले लेन होंगे और आपको अपनी रणनीति और विचार में परिवर्तन करना होगा. हालांकि, आख़िर में सब कुछ आपके फ़ायदे का ही होगा. खुशी की बात यह है कि आपके पास अपने लक्ष्य को पाने के नए रास्ते मूर्त रूप लेंगे और आपका काम आसान कर देंगे क्योंकि आप सही दिशा में सही क़दम रख रहे हैं. बेहतरीन तो यह कि उभरते ट्रेंड्स का तुरंत और गहराई से अध्ययन करने की आपकी क्षमता आपको तुरंत ही लाभ दिलाएगी. व्यावसायिक और वित्तीय मामलों में सावधान रहने से आपको फायदा मिलेगा. आपके लाभ में बढ़ोत्तरी होने की उम्मीद है.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

इस सप्ताह अलग-अलग ख्याल और जारी अनिश्चितता से आपको अपने भविष्य का मार्ग तय करने में काफी मदद मिलेगी. नतीजे के तौर पर आप नए और पुराने लक्ष्यों को पाने में सफल होंगे. साथ ही अपनी दृष्टि और दर्शन को भी बेहतर करेंगे. आगे बढ़ने के साथ ही, आप हालात के मुताबिक साधनों का इस्तेमाल करना सीख लेंगे ताकि आप घटनाओं के ज्वार को नई ताक़त पाने में इस्तेमाल कर सकें.

इन सबके इस्तेमाल से आप मौजूदा हालात में मुमकिन बेहतरीन रफ्तार पा सकेंगे.

आपकी प्रगति और प्रभाव को देख कर लोग आश्चर्य करेंगे कि क्या आपके पास कोई गुप्त कुंजी है, जिससे न केवल आप लोगों का दिल जीतते हैं, बल्कि बेहतर भाग्य भी बना लेते हैं. वैसे, अगर आप किसी खास योजना में दिलचस्पी रखते हैं, तो आपको अपनी कुछ योजनाओं में कुछ सुधार करना होगा. व्यावसायिक और वित्तीय मामलों में आप सही दिशा में चलते रहेंगे, भले ही आपकी पूरी प्रगति थोड़ी धीमी हो.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

यह आसानी से नहीं हो सकता है, पर आप निश्चित तौर पर अपने एजेंडे के मसलों को सुलझाने का एक से अधिक रास्ता पा लेंगे. एक चीज़ तो तय है, आप उन नतीजों से निपटने का भी रास्ता खोज लेंगे, जो किसी दूसरे की प्रतिक्रिया पर निर्भर करते हैं और इस वजह से पूरी तरह आपके नियंत्रण में नहीं होते. इसमें आपको कुछ बेहतरीन फ़ैसले लेने होंगे और अवास्तविक मांगों के खिलाफ दृढ़ भी होना पड़ेगा. ऐसा लगेगा कि खुद के फ़ैसले लेन का वक्त आ गया है, न कि चूहादौड़ से प्रभावित होने की ज़रूरत है.

यह खास तौर से अहम होगा कि उन लोगों से सावधान रहें, जो काम में देरी करने की कोशिश करते हैं. कुल मिलाकर आप कुछ अहम मसलों पर बहुत दूर तक असर करने वाले फैसले लेंगे. हालांकि, ऐसा करते समय कोशिश करें कि आप पूरी तरह वस्तुनिष्ठ हों और अपने लक्ष्य और परिस्थिति की मांग के बीच साफ-साफ रेखा खींचने की कोशिश करें. व्यावसायिक और वित्तीय मामलों में जिन निवेशों का फ़ायदा आपको मंदी की वजह से नहीं मिल पा रहा था, वह अब आपको फ़ायदा देगा.

राम नवमी

भारत में धर्म की जड़ें काफी गहरी है. करोड़ो हिन्दुओं की आस्थाओं का केंद्र श्री राम है और लाखों करोड़ो वर्षों से हिन्दू श्री राम का जन्मदिन चैत्र पक्ष की नवमी को मनाते है. राम अपनी समस्त ईश्वरीय शक्ति के साथ चैत्र शुक्ल नवमी को अयोध्या में अवतरित हुए . उन्होंने सांसरिक ऐश्वर्य त्याग कर सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए देश के समस्त दुखी जनों को संकट से मुक्ति दिलाई.. भगवान राम के अस्तित्व की बात लाखों वर्ष पुरानी है. राम नवमी चैत्र माह के नवमें दिन मनाई जाती है. श्री विष्णु के सातवें अवतार श्रीराम के जन्मोत्सव के रूप में हम रामनवमी का पर्व मनाते है. चैत्र शुक्ल नवमी को रामनवमी कहते है. अनेक राम मंदिरों में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से लेकर नौ दिनों तक यह उत्सव मनाया जाता है. रामायण के पारायण, कथा- कीर्तन तथा राम की प्रतिमा को विविध तरीके से श्रृंगार कर, यह उत्सव मनाया जाता है. नवमी की दोपहर को रामजन्म का कीर्तन होता है. मध्यान्ह कान में कुंची धारण किया हुआ एक नारियल पालने में रखकर उस पालने को हिलाते है व भक्त-गण उस पर गुलाल तथा फूलों की वर्षा करते है. कुछ स्थानों पर पालने में नारियल की अपेक्षा श्री राम की प्रतिमा भी रखी जाती है. इस प्रसंग पर श्री राम जन्म के गीत गाए जाते है. उसके उपरांत प्रभु श्रीराम की प्रतिमा की पूजा करते है व प्रसाद के रूप में सोंठ का वितरण करते है. कई लोग पंजेरी भी प्रसाद के रूप में बांटते है. इस दिन प्रभु श्रीराम के अनुष्ठानों का फल प्राप्त होता है तथा सभी पापों का नाश होकर अंत में उत्तम लोक की प्राप्ति होती है. हजारों वर्षो से शास्त्रों तथा धार्मिक गंथ्रों के माध्यम से राम कथा के बारे में न केवल भारतवर्ष बल्कि पूरे विश्व में चर्चा होती रही है दीपावनी, दशहरा व राम नवमी जैसे भारत में मनाए जाने वाले कई त्यौहार भगवान राम के अस्तित्व से जुड़े है तथा हज़ारो वर्षो से भारत में मनाए जा रहे है. वैसे तो हिन्दू धर्म में 33 करोड़ देवी देवताओं का जिक्र आया है परन्तु इन सभी में भगवान राम को ही मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से संबोधित किया जाता है. हार से प्रेरित होकर रालोग जरूरतमंद और वंचित लोगों की मदद पूरे समर्पण के साथ करें. भगवान राम को पुरुषोत्तम कहा गया. नैतिक आचार और आदर्शो के सर्वोच्च मानक जिसका पालन राम ने किया, आज भी पूरी मानवता के लिए प्रेरणादाय है और लोग उसका अनुसरण कर रहे है. राम नवमी भगवान राम के जीवन और आदर्शो की महानता की हमें याद दिलाता है यह पवित्र अवसर हमें भगवान राम की शिक्षा को आत्मसात करने का एक अवसर उपलब्ध कराता है. भगवान राम के रास्तों पर चलकर हम शांति और सामंजस्य सुनिश्चित कर पाएंगे. ऐसी दुनिया जहां मारकाट मची हुई है, वहां भगवान राम की शिक्षा गरीब और पिछड़े लोगों के कल्याण के लिए हमें काम करने को प्रेरित करती है. भगवान राम धर्म के प्रतीक है. वह सर्वोच्च नैतिक और मानवीय सिद्धांतो के भी प्रतीक हैं इस पर्व को मनाकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र के आदर्शों को अपनाना चाहिए,

महावीर जयंती

सात अप्रैल को भगवान महावीर की जयंती है. यह जैनियों का सबसे बड़ा त्योहार है, क्योंकि इसी दिन जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था. इस दिन जैन धर्म को मानने वाले भगवान महावीर के उपदेशों पर विचार करते हैं, उन्हें याद करते हैं और दान-पुण्य करते हैं. करीब हज़ार साल पुरानी बात है. ईसा से 599 वर्ष पहले वैशाली गणतंत्र के कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहां तीसरी संतान के रूप में चैत्र शुक्ल तेरस को वर्द्धमान का जन्म हुआ. यही वर्द्धमान बाद में महावीर बना. महावीर को वीर, अतिवीर और सन्मति भी कहा जाता है. जैन धर्म के 24 वें तीर्थकर महावीर स्वामी अहिंसा के मूर्तिमान प्रतीक थे. उनका जीवन त्याग और तपस्या से ओतप्रोत था. उन्होंने एक लंगोटी तक का परिग्रह नहीं रखा. हिंसा, पशुबलि, जाति-पाति के भेदभाव जिस युग में बढ़ते चले गए, उसी युग में ही भगवान महावीर ने जन्म लिया. उन्होंने दुनिया को सत्य, अहिंसा का पाठ पढ़ाया. दुनिया को पंचशील के सिद्धांत भी बताए. सत्य के बारे में कहा कि हे पुरुष तू सत्य को ही सच्चा तत्व समझ. जो बुद्धिमान सत्य की ही आज्ञा में रहता है, वह मृत्यु को तैरकर पार कर जाता है. उनका सबसे प्रिय संदेश था अहिंसा के मार्ग पर चलने का. भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, क्षमा पर सबसे अधिक जोर दिया. त्याग और संयम, प्रेम और करुणा, शील और सदाचार ही उनके प्रवचनों का सार था. भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना की. देश के भिन्न-भिन्न भागों में घूमकर भगवान महावीर ने अपना पवित्र संदेश फैलाया. भगवान महावीर ने 72 वर्ष की अवस्था में ईसापूर्व 527 में पावापुरी में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को निर्वाण प्राप्त किया. उन्होंने अपने कुछ खास उपदेशों के माध्यम से दुनिया को सही राह दिखाने की कोशिश की तथा अपने अनेक प्रवचनों से दुनिया का सही मार्गदर्शन किया.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी...

बॉलीवुड में नए-नए आए आमिर खान के भांजे और पप्पू कांट डांस साला गाने से मशहूर हुए अभिनेता इमरान खान की एक ख्वाहिश है. यह ख्वाहिश बिल्कुल निजी-सी है और थोड़ी अजीब भी. इमरान दरअसल लड़की बनना चाहते हैं. इसके लिए वह अगले जन्म तक इंतज़ार भी करने को तैयार हैं. वह लड़की इसलिए बनना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि लड़की बनने पर अच्छे-अच्छे कपड़े और सुंदर-सुंदर गहने पहनने को मिलते हैं, जिन्हें पहन कर वह और सुंदर दिखेंगे. हालांकि वह यह भी मानते हैं कि ऊंची हिल वाली सैंडल कभी नहीं पहनेंगे, क्योंकि उनका मानना है कि हिल पहनने से तकलीफ बहुत होती होगी. इधर गजनी फिल्म में धूम मचाने वाली और फिल्मफेयर में नवोदित कलाकार का पुरस्कार जीतने वाली अभिनेत्री आसिन की दिली तमन्ना इसके ठीक उलट है. वह किसी फिल्म में लड़के का किरदार निभाना चाहती हैं, क्योंकि वह नायक की तरह मारधाड़ और गुंडों की पिटाई करना चाहती हैं. भई, अब असिन और इमरान की ख्वाहिश पर तो हम यही कह सकते हैं कि इंशाल्लाह, आपकी ख्वाहिश ज़रूर पूरी हो.

प्रीति की फिल्म फंसी सेंसर बोर्ड में

दीपा मेहता के निर्देशन में बनी प्रीति की नई फिल्म विदेश, हेवन ऑन अर्थ सेंसर बोर्ड के पचड़े में फंस गई है. सेंसर के लोगों का मानना है कि फिल्म में हिंसा बहुत अधिक है और यह भारतीय मानस के लायक नहीं है. फिल्म का अंत पलायनवादी होने के कारण भी सेंसर बोर्ड की भंवे तन गई हैं. अब लगता है प्रीति के चाहनेवालों को कुछ दिनों तक और इंतज़ार करना पड़ेगा, क्योंकि एक तो वैसे भी प्रीति की काफी अर्से से कोई फिल्म नहीं आई है, और अब नई फिल्म रिलीज होने वाली थी, तो सेंसर में फंसने के आसार बन गए हैं.

आमिर ने लगाई सलमान की क्लास..

फिल्म *तारे ज़मीं पर* में टीचर का किरदार निभाने के बाद लगता है, आमिर को सचमुच ही टीचर बनना आ गया है. हाल ही में उन्होंने सलमान खान को गुरुमंत्र दिया. इस मंत्र का असर भी तुरंत ही देखने में आया. जिस सलमान ने परिवार वालों और तमाम गर्लफ्रेंड के लाख कहने के बावजूद शराब पीनी नहीं छोड़ी थी, आमिर के कहने पर एक झटके में छोड़ दी. माजरा दरअसल यह है कि सल्लू ने आमिर को अपनी नई फिल्म वीर का प्रोमो दिखाया. आदत से मजबूर मिस्टर परफेक्शनिस्ट आमिर ने कहा कि सलमान, इसमें तुम कहीं से वीर नहीं, बेवड़े लग रहे हो. शराब का असर साफ़ दिख रहा है. सलमान ने तुरंत ही इस सलाह पर अमल कर शराब छोड़ दी और दिन में दो बार कसरत कर अपनी बॉडी बनाई और प्रोमो को फ़िर से शूट करने में लग गए हैं.

गंजापन बन रहा है बॉलीवुड में कामयाबी की कुंजी

लगता है, अपने बॉलीवुड कलाकारों पर भी गंजे होने का भूत सवार हो गया है. फिल्म फायर में शबाना आज़मी और नंदिता दास से शुरू हुई यह परंपरा काफी तेजी से लोकप्रिय हो रही है. अभिनेत्री शिल्पा शेट्टी जल्दी ही अपनी फिल्म डिज़ायर (जिसे मलयालम फिल्मों के निर्देशक आर. शरद बना रहे हैं) में अपने बालों का बलिदान दे रही हैं. बालों को उड़ाने की इस सूची में फिल्म *फैशन* की खूबसूरत मॉडल कंगना रानावत भी शामिल हैं. वह एक तमिल फिल्म के लिए बाल मुंडवाएंगी. काफी समय से फिल्मों से दूर रही अंतरा माली भी गंजे सिर के साथ वापसी कर रही हैं. अर्जुन रामपाल निर्देशक प्रकाश झा की फिल्म *राजनीति* में बिना बालों के नज़र आनेवाले हैं.